इकाई 1: निरूक्त का महत्व

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

वैदिक साहित्य से सम्बन्धित यह प्रथम इकाई है। इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते हैं कि निरूक्त किसे कहते हैं ? निरूक्त की रचना क्यों ? इसकी आवश्यकता क्या है ? मूल रूप से इनके बारे में बताया गया है। तथा इनके महत्त्व के बारे में विशेष प्रकार में बताया गया है।

यास्काचार्य द्वारा रचित निरूक्त में वेद के मन्त्रों के अर्थ का महत्त्व विशेष रूप से बताया गया है। वेद के मन्त्रों के उच्चारण मात्र में फल होता है या उच्चारण के साथ अर्थ का भी महत्त्व होता है इन सबके बारे में भली भाति बताया गया है किन्तु वेद मन्त्रों के उच्चारण के साथ साथ अर्थो को भी जानना आवश्यक है। उदाहरण सहित प्रयोजनो को बताया गया है।

इस इकाई के अध्ययन से आप कुछ वैदिक शब्दों के साथ वेदार्थ के महत्त्व के बारे में भी भली भाति परिचित होंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् यास्काचार्य रचित निरूक्त के महत्त्व के बारे में आप भली भॉंति परिचित होंगे ।

- निरूक्त किसे कहते है इनका परिचय प्राप्त कर सकेंगे
- निरूक्त का महत्त्व क्या है ? इनके बारे मे आप परिचित होंगे।
- निरूक्त तथा निघण्टु में क्या अन्तर है इसके बारें में आप समझ सकेंगे ।
- कौत्स के मत में मन्त्रार्थ की आवश्यकता है कि नहीं इसके बारे में आप समझ सकेंगे ।
- यास्काचार्य के मतमें मन्त्रार्थ की आवश्यकता है कि नही इसके बारे मे समझ सकेंगे।
- वेदार्थ को न जानने से हानि क्या है ? इसके बारे में आप परिचित होंगे

1.3 निरूक्त का महत्व

किसी शब्द के अर्थ ज्ञान में दूसरे व्याकरणादि की अपेक्षा के बिना स्वयं जिससे अर्थ प्रगट होता हो, उसे निरूक्त कहते हैं जैसा की निरूक्त ग्रन्थ में गौः ,ग्मा, क्ष्मा, क्षा, क्षमा, इत्यादि पदो से लेकर वसवः देवपत्न्यः , इन पदो तक का समाम्नाय (निघण्टु) जो कहा गया है उसके अर्थ ज्ञान के लिए दूसरे व्याकरणादिकीअपेक्षा नही है, क्योकि पृथिवी के इतने नाम और सुवर्ण के इतने नाम इस प्रकार स्पष्ट रूप से कहा गया है।

1.3.1 वेदांगों मे निरूक्त

अभी तक अनेक ग्रन्थ पूर्णतया उपलब्ध नहीं हैं। तथापि इस विपुलकाय साहित्य को देखकर हम लोगो को उस समय के ज्ञान एवं परिश्रम पर आश्चर्य करना पड़ता है इन सबों को ठीक ठाक समझने

एवं तदनुसार कार्य-कलाप का सन्चालन कराने के लिए वेदांग ग्रन्थों की आवश्यकता होती है जो शरीर के अंगों के समान ही वेद के अनिवार्य भाग है वेद के अंग है। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्द, ज्योतिष, और निरूक्त इन सबों का विभाजन पाणिनि शिक्षा मे इस प्रकार कहा गया हैं।

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठयते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरूक्तं श्रोत्रमुच्यते।।
शिक्षा घ्राणं त वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात्सागंमधीत्यैव ब्रह्म लोके महीयते।।

इस प्राकर वेद के छः अंग बताये गये हैं। इन छः अंगों में भी निरूक्त अपनी कई विशेषतायें रखता है। इनमें मुख्यतया वैदिक शब्दों के अर्थ जानने के प्रक्रिया बतायी जाती है। जैसा कि सायणाचार्य ने इसका लक्षण अपने ऋग्वेद भाष्य भूमिका में किया है। अर्थ जानने के लिए स्वतन्त्र रूप से जहाँ पदों समूह कहा गया है वही निरूक्त है। निरूक्त प्रत्येक वैदिक शाखा के अलग-अलग हैं।

वेद के अर्थ ज्ञान के लिये यास्क द्वारा रचित निरूक्त का महत्त्वपूर्ण स्थान हैं। निरूक्त के सिवा कोई ऐसा शास्त्र नहीं है,जो तात्पर्यानुसार सभी वेद के शब्दों का ज्ञान करा सके। जैसे शास्त्रों में शब्द ज्ञान व्याकरण शास्त्र से होता है, उसी प्रकार वेद के शब्दों के अर्थ का निर्वचन निरूक्त से ही होता है। अर्थ परिज्ञान में कारणीभूत होने के कारण निरूक्त वेद का सर्वप्रधान अंग है।

1.3.2 निरूक्त की उपयोगिता

निरूक्त के प्रथम अध्याय में केवल उसकी उपयोगिता के बारे में बताया गया है। श्री यास्काचार्य के अनुसार निरूक्त की उपयोगिता कई विषयों के लिए है-

(1) निरूक्त के प्रथम अध्याय प्रथम पाद में'समाम्नायः समाम्नातः, स व्याख्यातव्यः लिखा है इस का अर्थ यह है कि निघण्टु के शब्दों की व्याख्या करना निरूक्त का काम है, अर्थात निरूक्त भाष्य है। दुर्गाचार्य भी निरूक्त को भाष्य कहते हैं। विन्टरनित्ज!यास्काचार्य को प्रथम भाष्यकार मानते हैं तथा पतन्जलि को वे अपली अलंकृत शैली में भाष्यकारों का राजकुमार कहते हैं। इस प्रकार शब्दों का अर्थ बोध कराना निरूक्त का प्रथम कार्य है। इस लिए निरूक्त को निघण्टु का व्याख्या ग्रन्थ माना गया है। मूल ग्रन्थ निघण्टु कहलाता है। वह मुख्यतः ऋग्वेद के शब्दों का संग्रह रूप वैदिक शब्दकोश है।

(2) 'इदमन्तरेण मन्तुषु अर्थप्रत्ययो न विद्यते' निरूक्त शब्दों के अर्थ का निर्णय करता है और यास्काचार्य उनका प्रयोग दिखलाने के लिये वैदिक मन्त्रों का उदाहरण देकर उनकी व्याख्या करते हैं

(3) प्राचीन काल के चौदह विद्यास्थानों मेंनिरूक्त की गणना है यह व्याकरण शास्त्र का पूरक भी है क्योंकि व्याकरण शब्दों की रचना (बहिरंग) की व्याख्या करता है तो निरूक्त उनके अर्थ अन्तरंग की खोज करता है इसके लिये वह शब्दों की प्रकृति का पता लगाकर उसके अर्थ से संगति दिखाते हुए पुरे शब्द के अर्थ का अनुसन्धान करता है। किन्तु व्याकरण शास्त्र में सर्वस्व अर्पण नही कर देता,

क्योंकि व्याकरण की बनावट शब्द सस्कार या वृत्तिया अपवाद (वियष) से भरी होती है फिर भी व्याकरण शास्त्र और निरूक्त में अविच्छिन्न सम्बन्ध है

(4) यज्ञ में भी निरूक्त से काफी सहायता मिलती है। क्योंकि इसके द्वारा ही किस मन्त्र में कौन देवता है - इसका निर्णय किया जा सकता है और तभी किसी देवता को हविष देने के लिए किसी विशेष मन्त्र का उच्चारण सम्भव है। कभी-कभी किसी विशेष मन्त्र में कई देवता रहते है जिसका पता निरूक्त ही लगाता है कि किसे प्रधानता दी गई । इस गुण के कारण निरूक्त कर्मकाण्ड और पूर्वमींमासा का भी पूरक कहा जा सकता है

(5) ' इदमन्तरेण विभागो न विद्यते (ज्ञायते) ' - निरूक्त के द्वारा ही किसी पद को उसके विभिन्न खण्ड़ो मे बाटा जा सकता है क्योंकि अर्थ न जानने वाला यह नही समझ सकता है कि किसी पद में एक ही शब्द है या दो शब्द, जैसे अवसाय पद्वते = पैर वाले भोजन के लिए,अवस् = भोजन - इसमे

पुराण न्यायमीमांसा धर्मशास्त्राअगंमिश्रिता:
वेदा, स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश। (या 0 स्मृति)

अर्थात् पुराण, न्याय, मीमांसा धर्मशास्त्र, ६ वेदांग, ४. वेद = १४ विद्यास्थान है।अर्थात रक्षा करना, जाना, इच्छा करना और अस् प्रत्यय है दोनो मिलकर ही पद बना है इसलिये अवस एकपद है जिसका चतुर्थी एकवचन में रुप अवसाय होता है जिसका अर्थ होता है भोजन के लिए। किन्तु अवसाय का भिन्न अर्थ होता है अश्वान्त्र घोड़ो को खोलकर यहाँ अव उपसर्ग है, तथा स्यो (खोलना) धातु से ल्ययप् प्रत्यय होकर बना है, इसलिए दो पद होने को कारण इसमे पद विभाग करना पड़ता है तथा पद पाठकार 'अवऽसाय' ऐसा इसका पद पाठ करते हैं। एक ही तरह के पद में, कभी एक शब्द, कभी दो शब्द हो जाते हैं, इसे निरूक्त को नही समझने वाले नहीं समझ सकते हैं।

(६) अर्थ ज्ञान का महत्त्व भी निरूक्त के द्वारा जाना जा सकता है क्योंकि जिसके पास ज्ञान है उसकी प्रशंसा तथा जिसके पास ज्ञान नहीं है उनकी निन्दा होती है वेदों का अर्थ बिना जाने हुए उन्हें रट जाना निष्फल है। कहा भी है-

यदधीमविज्ञातं निगदेनैव शब्दते।
अनग्नाविव शुष्कैधो न तन्नवति कर्हिचित।

अर्थात् गुरू से पढ़ा गया जिस वेद वाक्य को अर्थज्ञान से रहित होकर पाठ के रूप में बार बार उच्चारण करते हैं , कभी प्रकाशन नहीं काता, जिस प्रकार अग्नि रहित प्रदेश में सूखा घास या काठ प्रज्वलित नहीं होता । अर्थात वेदार्थ सहित पाठ करना चाहिए वेदार्थ रहित पाठ करने से कोई फल नही होता है। इसलिए निरूक्त का अध्ययन करना अवश्यक है।

(७) अन्त में हम आधुनिक भाषा विज्ञान की दृष्टि से निरूक्त की उपयोगिता पर विचार कर सकते है भाषा विज्ञान की एक शाखा है - अर्थ विज्ञान जिसकी ओर लोग का ध्यान विगत-शली के अन्त में ही आकृष्ट हुआ जबकि ब्रील ने सन् १८९८ ई में अपना ग्रन्थ एसे दसिमन्तिक फ्रेन्च में लिखा । यास्काचार्य ने इस विज्ञान की नींव विक्रम के कई सौ पूर्व दे चुके थे। अर्थ में किस प्रकार का परिवर्तन

होता है इसका निर्देश वे स्पष्ट रूप से करते है लक्ष्मण सरूप निरूक्त की ’व्युत्पत्तिविज्ञान, भाषा-विज्ञान का सबसे प्राचीन भारतीय ग्रन्थ मे कहते हैं। फिर भी व्युत्पत्तिविज्ञान में तो निरूक्त की तुलना ही नहीं है।

मन्त्रों के अर्थ के विषय में यास्काचार्य द्वारा उठायें गये एक और विवाद पर विचार कर लेना उपयुक्त न होगा। मन्त्रों के अर्थ के विषय में बहुत प्राचीन काल से ही शअंकाये उठायी गयी थी। लोकायतमत के लोग तो मन्त्रों को इसलिए अर्थहीन कहते थे कि इनमें उलजलूल बाते भरी पड़ी है वेदो की कोई सत्ता नही है, इन्हे मानना व्यर्थ है दूसरी और कर्मकाण्डियों का कहना था कि वेदों का कोई वाच्यार्थ नहीं किन्तु उनका पाठ अनिवार्य है, पाठ करने में अर्थ का ज्ञान नहीं रहता। हम निष्ठा से पाठ करते है, क्योंकि यही हमारा धर्म है इनके पक्ष की विशेषता सायणाचार्य ने अपनी ऋग्वेदभाष्यभूमिका के स्वाध्याय प्रकरण में की है, जिसमे 'पुरूषार्थानुशासन (एकअप्रतिमग्रन्थ) से सूत्रों का उद्धरण देकर उन्होंने निष्कर्ष निकाला है । आज के कर्मकाण्डी भी पाठ-मात्रमें ही वेद की सत्ता समझते हैं किन्तु ऐसा नहीं कहा जा सकता कि वेदों के अर्थ में उनका विश्वास नहीं है।

1.3.3 निरूक्त तथा निघण्टु

निरूक्त ,निघण्टु का व्याख्या ग्रन्थ है मूल ग्रन्थ निघण्टु ही है, इसमें पाँच अध्याय हैं। पहले तीन अध्यायों में एक एक अर्थ के वाचक अनेक शब्दों का संग्रह किया गया है। 'इत्येक विंशतिः पृथिवीनामधेयानि’ अर्थात् गौः इत्यादिरापृथिवी वाचक शब्दों का संग्रह एक सथान पर कर दिया गया है। इसी प्रकार ’इति पच्चविशतिर्मनुष्यानामधेयानि’ के द्वारा मनुष्य अर्थ के वाचक पचीस शब्दों का संग्रह कर दिया गया है निघण्टु के भी पहिने के तीन अध्यायों का संग्रह कर दिया गया है इसीलिए निघण्टु का पहिले के तीन अध्याय वाला भाग एक भाग माना गया है और उसे नैधन्त का यह भाग नैगम काण्ड नाम से कहा जाता है। 'निरुक्त’ के चतुर्थ अध्याय के प्रारम्भ में**’एकार्थमनेकार्थमित्युक्तम’अथमान्यनेकार्यानिएकशब्दानि तान्यतोऽनुक्रमिण्यामोऽनवगतसंस्कारांश्चनिगमान। तदैकपदिकमित्याचक्षते’**

इस प्रकार लिखकर भास्कराचार्य निघण्टु काण्ड तथा नैगम काण्ड का यही शैली-भेद प्रदर्शित करते हैं। इसका अर्थ यह है कि 'नैघन्टुकाण्ड’’एकार्थमनेक शब्दम्’ अर्थात एकार्थवाचक अनेक शब्दों का संग्रह रूप है और दूसरा 'नैगमकाण्ड’ अनेकार्थानि एक शब्दानि अर्थात् अनेकार्थ एक एक पदों का संग्रह रूप है ।

'निघन्टु’ का तीसरा अध्याय उसका पंचम अध्याय है। इस अध्याय में ऋग्वेंद के देवताओं का संग्रह किया गया है। इसलिए यह भाग दैवतकाण्ड कहा गया । निरूक्त के तीन अध्याय 'नैघन्टुक काण्ड ४-६ तक, अगले तीन अध्याय 'नैगमकाण्ड’ और अन्तिम ६ अध्याय 'दैवतकाण्ड’ के नाम से कहे जाते हैं । इस प्रकार निरूक्त को तीन काण्डों के रूप में तीन मुख्य विभागों में विभक्त किया गया है।निरूक्त के प्रारम्भिक तीन अध्याय यद्यपि ’नैघन्टुकाण्ड’ नाम से कहे जाते हैं, किन्तु उसमेंनिघन्टु

पठित पदों की व्याख्या द्वितीय अध्याय के चतुर्थपाद से प्रारम्भिक हुई है वही पर भास्कराचार्य ने '**अथातोऽनुक्रमिण्यामः**' लिखकर अनुक्रम से निघन्टु के पदों की व्याख्या की प्रतिज्ञा की है इसके पूर्व प्रथम अध्याय के चार पाद तथा द्वितीय अध्याय के तीन पादों मेंयास्काचार्य ने निरूक्त के सम्बद्ध विषयों का विवेचन किया है। श्री यास्काचार्य का यह 'निरूक्त' ग्रन्थ वस्तुतः मौलिक नहीं अपितु एक व्याख्या ग्रन्थ है पर उसका सम्मान एवं महत्व मूल ग्रन्थ से भी अधिक है निरूक्त का आधारभूत मूल ग्रन्थ निघन्टु है वह एक प्रकार का वैदिक शब्दकोश है उनमें वेदों के और विशेष रूप से ऋग्वेद के महत्वपूर्ण एवं क्लिष्ट शब्दों का उच्चारण किया गया है इन शब्दों के अर्थो का परिज्ञान हो जाने पर वेदार्थ का समझना अत्यन्त सरल हो जाता है। इन शब्दों का संग्रह इस प्रकार से किया गया है कि उनके अर्थ का ज्ञान सरलता से हो सके। जैसे कि वेदों मे पृथिवी अर्थ के बोधन के लिए जितने शब्द होते है उन सबका संग्रह एक साथ कर दिया गया है और उनकी गणना भी (इति एकविशतिः पृथिवीनामधेयानि) इस प्रकार निर्देश उनके अन्त में कर दिया गया है। इसीलिये इन सब शब्दों का अर्थ स्पष्ट हो जाता है । इसलिये ग्रन्थ के आरम्भ में'स व्याख्यातव्यः लिखकर भास्काचार्य ने अपने ग्रन्थ के विषय तथा प्रयोजन रूप दोअनुबन्धी का निर्देश किया है वैदिक शब्द कोश की व्याख्या करना इस ग्रन्थ का मूल प्रयोजन है। इस ग्रन्थ के द्वारा वेदार्थ का परिज्ञान और वेदाध्ययन को सुकर बनाना प्रयोजन है। वेदार्थ के जिज्ञासु उस ग्रन्थ के अध्ययन अध्यापन के अधिकारी हैं। विषय के साथ ग्रन्थ का प्रतिपाद्य प्रतिपादकभाव तथा अधिकारी के साथ उसका बोध्य - बोधक भाव सम्बन्ध है। इस प्रकार इस प्रथम पंक्ति के द्वारा ग्रन्थ के अध्ययन में प्रवृति के चार कारणों का निरूपण भी हो जाता है।

निघण्टु की रचना शैली से यद्यपि उन वैदिक शब्दों के अर्थ का सामान्य रूप से ज्ञान हो जाता हैं, परन्तु उनका विश्लेषण करके उनके अवयवार्थ की विवेचना उसमें नही की गयी है, इसलिए इन शब्दों का विशेष रहस्य उसमें नही खुलता है। इसी कमी की पूर्ति रने के लिए यास्काचार्य ने इस व्याख्या ग्रन्थ निरूक्त की रचना की है। यह प्रक्रिया केवल इस वैदिक - कोश के विषय में ही नही अपितु 'अमर कोश' लौकिक शब्द कोशो के सम्बन्ध में भी पायी जाती है। 'अमर कोश' के उपर भट्टोजिदीक्षित के पुत्र भानुजी दीक्षित ने इसी प्रकार से व्याख्या की रचना की है। निघण्टु जैसे महत्वपूर्ण वैदिक शब्दकोश के उपर तो इस प्रकार की व्याख्या की और भी अधिक आवश्यकता थी। यास्काचार्य ने इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए इस निरूक्त ग्रन्थ की रचना कर वेदाध्ययन मार्ग को अत्यन्त प्रशस्त कर दिया है।

मंत्रों की अनर्थकता

यास्काचार्य ने मंत्रों के अर्थ बोध करना निरूक्त का दूसरा मुख्य प्रयोजन बतलाया है इस पर'कौत्स' आदि कुछ लोगों का कहना है कि मंत्रों का कोई अर्थ नही होता है। उनका जो कुछ भी फल

हैं। इसलिए मंत्रों के अर्थो का बोध निरूक्त का प्रयोजन है तब तो निरूक्त व्यर्थ ही है इसी पूर्वपक्ष को युक्तियों द्वारा पुष्ट करते हैं-इसका अभिप्राय यह है कि लौकिक वाक्य जो सार्थक होते है उनमें न तो शब्द ही निश्चित होते हैं और न उनमें क्रम ही निश्चित होता है। हम उदकम् आनय भी कह सकते हैं और उसके स्थान पर 'जलमाहर' 'तोयमानय' आदि वाक्य भी बोल सकते है। इसलिये सार्थक वाक्य में पदो के निश्चित होने का नियम नही होता है। इस प्रकार 'जलम् आनय' के स्थान पर क्रम को बदल कर 'आनय जलम्' भी बोला जा सकता है।

पर 'आग्निमीले पुरोहितम्' आदि वैदिक मंत्रों में न तो अग्निमीले शब्दों को बदलकर 'वह्निस्तौमि' बोला जा सकता है और न उनके क्रम को बदलकर 'इले अग्निम्' ही बोला जा सकता है। 'अग्निमीले पुरोहितम्' इन्हीं शब्दों को इसी क्रम से बालना अनिवार्य है। इससे यह प्रतीत होता है कि इन शब्दों का कोई अर्थ नही होता हैं अपितु केवल उनके उच्चारण मात्र से कुछ अपूर्व फल उत्पन्न होता है यह मंत्रों के आनर्थक्य की सिद्धि के लिए प्रथम मुक्ति कौत्स की ओर से दी गयी है । अन्य युक्तियाँ आगे देते हैं।इसका अभिप्राय यह है कि 'उरू प्रथस्व' इत्यादि उरूप्रथा उरूप्रथस्वोरूते यज्ञपतिः प्रथनाम् इत्यादि (यजुर्वेद १-२२) मंत्र से यह टुकड़ा लिया गया है।

(यजुर्वेद १-२२) मंत्र का विनियोग शतपथ ब्राह्मण ने पुरोडोश के फैलाने के कार्य में करते हुवे 'उरू प्रथस्व इति प्रथयति' यह लिखा है। यदि यह मंत्र सार्थक होता तो उसके 'उरूप्रथस्व' पदों का पढ़ते ही यह विदित हो जाना चाहिए था कि इसको पढ़कर पुरोडाश का प्रश्न करना-फैलाना-है उस दशा में ब्राह्मण में'इति प्रथयति' यह लिखा गया है। इसमें यह प्रतीत होता है कि ब्राह्मण ग्रन्थ की दृष्टि में मंत्र मे इस अर्थ का बोध कराने की सामर्थ्य नहीं हैं। क्योकि मंत्र अनर्थक है इसीलिए ब्राह्मण ने उसको 'रूप सम्पन्न्' किया है, उसका विनियोग किया है। अतः मंत्र अनर्थक ही है।मंत्रों को अनर्थक सिद्ध करने के लिए कौत्स की अन्य युक्ति भी निम्न प्रकार से है।

यज्ञ में स्थापित किये जाने वाले यूपके निर्माणार्थ वृक्ष को काटने की क्रिया में इन (यजु0 ४-१/६-१५) मंत्रों को विनियोग किया गया है वृक्ष के उपर कुश को रखकर कुठार द्वारा इसको काटा जाता है। उस समय कुश को सम्बोधन करके 'ओषधे त्रायस्व' इस प्रकार वृक्ष की रक्षा की प्रार्थना की जाती है। और कुठार से काटते समय स्वधिते मैनं हिंसीः' इस प्रकार हिंसा न करने अर्थात् वृक्ष को न काटने की प्रार्थना की जाती है। और कुठार से काटते समय स्वधिते मैनं हिसी:' इस प्रकार हिंसा न करने अर्थात् वृक्ष को न काटने की प्रार्थना की जाती है यदि इन मन्त्रों की सार्थक माना जाय तो जब इन को पढ़कर, वृक्ष को काटा जा रहा है उस समय 'ओषधे त्रायस्व' और 'स्वधितेमैनंहिंसी: इस प्रकार की प्रार्थनाएँ विल्कुल असंगत हो जाती है। इसलिये यह सिद्ध होता है कि मन्त्रों का वास्तव में कोई अर्थ नही है। उस समय इन मन्त्रों के पाठ अथवा उच्चारणमात्र से ही फल होता है उसके साथ अर्थ का कोई सम्बन्ध नहीं है।

यदि मन्त्रों को सार्थक माना जाय तो इन परस्पर विपरीत बातों की कोई सगंति नही लगती है अत एव मन्त्रों मो अनर्थक मानना ही उचित है यह केवलकौत्स का अभिप्राय है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

लघु - उत्तरीय प्रश्न

1.निरूक्त किसे कहते हैं?

2.वेद के कितने अंग होते हैं?

3.विधा कितने प्रकार के होते हैं?

4.व्याकरण तथा निरूक्त में कौन सा संबंध है ?

5.निरूक्त निघण्टु का कौनसा ग्रन्थ है?

6.निरूक्त में कितने अध्याय है?

7.यास्काचार्य के द्वारा लिखित निरूक्त कौन सा ग्रन्थ है ?

8.निरूक्त का मूल प्रयोजन क्या है ?

9.किसके मत में मंत्रो के अर्थ की आवश्यकता नही है ?

10.वेदांगों में निरूक्त कौन सा अंग है ?

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. निरूक्त का लेखक कौन है-

(क) सायणाचार्य (ख) भास्कराचार्य

(ग) यास्काचार्य (घ) पाणिनि

2. प्रथम अध्याय में कितने पाद है-

(क) चार (ख) तीन

(ग) छः (घ) एक

3. वेदांगो मे निरूक्त को क्या कहा गया है-

(क) आँख (ख) नाक

(ग) कान (घ) श्रोत्र

4. निरूक्त में मनुष्य अर्थ वाचक कितने शब्दों का संग्रह किया का गया है-

(क) पचीस (ख) दश

(ग) पचास (घ) साठ

5. मंत्रो की सार्थकता का उपपादन किसने किया है-

(क) सायणाचार्य (ख) यास्काचार्य

(ग) शाकटायन (घ) भास्कराचार्य

6. सहिता पाठ के साथ किस पाठ का ज्ञान आवश्यक है-

(क) पद पाठ (ख) जटा पाठ

(ग) धन पाठ (घ) संहिता पाठ

कौत्स का अन्य मत

मन्त्रों के विप्रतिसिद्धार्थ अर्थात् परस्सपर विपरीत अर्थो के प्रतिपादक होने का एक उदाहरण है- एक ही वस्तु माता भी माना जाय पिता भी बन जाय यह नहीं हो सकता है। अदिति कोही द्यौ और अन्तरिक्ष दोनों बतलाना इसी प्रकार का विरूद्ध कथन है। यदि इन मन्त्रों को सार्थक माना जाय तो उनमें विरूद्ध अर्थ का प्रतिपादन भीमानना होगा, जो कि उचित नहीं है इसलिए मन्त्र अनर्थक मानने चाहिए यह कौत्स का अभिप्राय है।

1.3.4 मन्त्रों की सार्थकता का उपपादन

इसके पहले कौत्स ने अनर्थक सिद्ध करने का यत्न किया हैं। अब उसके मत का निराकरण करके ग्रन्थकार मन्त्रों की सार्थकता वाले सिद्धान्त पक्ष की स्थापना करेंगे। इस प्रयोजन के लिए वे पहले सिद्धान्त पक्ष की स्थापना करते हुए लिखते हैं - 'अर्थवन्तः शब्दसामान्यात्' अर्थात् शब्दों की समानता के कारण मन्त्र अर्थवान हैं।

जिस प्रकार सन्तानोत्पादन रूप कार्य के लिए विवाह किया जाता है उसी प्रकार का वर्णन ऋ0 १0-८५-४२मन्त्र में किया गया है। इससे मन्त्रों की सार्थकता सिद्ध होती है। इसलिए मन्त्रों को अनर्थक नही सार्थक मानना चाहिए।

इस प्रकार अपने सिद्धान्त पक्ष की स्थापना के लिए ग्रन्थकार ने 'शब्द सामान्यात्' रूप एक युक्ति और एक ब्राह्मण वाक्य प्रमाण के रूप में उपस्थित किया है। युक्ति का आशय यह है कि जैसे लोक में अग्नि आदि शब्द वेद में भी प्रयोग होते हैं। तब वे लोक में तो सार्थक हो औार वेद में अनर्थक हो जाय यह तो नही हो सकता है जैसे लोक में अग्नि आदि शब्द सार्थक है इसी प्रकार उनको वेद में भी सार्थक मानना होगा। इसलिए मंत्र भी लौकिक वाक्यों के समान सार्थक ही हैं।

युक्ति के द्वारा मंत्रों की सार्थकता को सिद्ध करके उसके समर्थन के लिए ऐतरेय ब्राह्मण (¬१४,१-१३,१-१६,१-१७) तथा गोपथ ब्राह्मण(२-६,४-२) आदि अनेक स्थानों पर आये हुए प्रबल एवं असन्दिग्ध रूप से मंत्रो की सार्थकता को सिद्ध करने वाले ब्राह्मण वचन उद्धृत किये हैं। इस प्रकार की युक्ति और प्रमाणों के द्वारा अपने सिद्धान्त पक्ष की स्थापना के बाद पूर्व पक्षी कौत्स ने मंत्रों की अनर्थकता सिद्ध करने के बाद जो युक्तियाँ प्रस्तुत की थी उन सबका आगे खण्डन कर रहे हैं।

लौकिक शब्दों में भी द्वन्द समास में अनेक स्थानों पर पूर्वनिपातया पर निपात का नियम पाया जाता है, और शब्दों को भी नियम पाया जाता है कि अमुक शब्दों का द्वन्द समास होने पर अमुक शब्द नियम से पहिले आयेगा और अमुक शब्द बाद मे आयेगा। अजाद्य (अष्टा0 २.२.३३) इस सूत्र में अजादि और अदन्त पद के पूर्व प्रयोग का नियम किया गया है। इस नियम के अनुसार 'ईश -कृष्णौ' यह प्रयोग ही होता है कृष्ण इशौ नही हो सकता है। इसी प्रकार इसी सूत्र के अर्न्तगत 'ध्यन्तादजाधन्त विप्रति षेधेन' इस वार्तिक द्वारा 'ईन्द्राग्नी' यह पद नियन्त्रित होता है । इसलिए क्रम या पदों के नियत होने से जैसे ये लौकिक प्रयोग अनर्थक नही होते है। इसी तरह वैदिकमंत्र भी अनर्थक नही होते हैं ।

इसी तरह कौत्स के अन्य मतो का उत्तर देते हुए यास्काचार्य जी कहते है अथो एतत्' इत्यादि इसका अभिप्राय यह हुआ कि जब वेदमंत्र काटे जाने वाले वृक्ष के लिए यह कहतें है कि 'औषधे त्रायस्व' स्वधिते मैनं हिसीः तो इस वेद वचन से यह प्रतीत होता हैकि वृक्ष के काटे जाने पर भी यह उसकी हिंसा नही है इससे उसका अपकर्ष नही उत्कर्ष ही होता है। बहुजन हिताय - बहु न सुखाय किये जाने वाले किसी महान कार्य में व्यक्ति का आत्मोत्सर्ग भी उसके उत्कर्ष का हेतु मानकर ही उस छेदन को भी रक्षा रूप मानकर वेद ने 'ओषधे त्रायस्व' आदि कहा है। उसी प्रकार 'स्वधिते मैनं हिसीः' हिंसा का अभाव अर्थात् जीवन की सार्थकता सूचित होती है। इसीलिए इस उदाहरण के द्वारा कौत्स ने जो मंत्रो का विरोध दिखाकर उनको अनर्थक सिद्ध करना चाहते हैं, वह उचित नहीं है।

1.3.5 कौत्स की अन्य युक्ति का खण्डन

प्राचीन काल में शिष्टाचार व्यवस्था में जब गुरू आदि को शिष्य प्रणाम करते थे तो उसके साथ सदा अपना नाम लेकर ही प्रणाम करते थे। इसका कारण यह है कि शिष्य के अधिक होने के कारण कदाचित गुरू को शिष्य का नाम विस्मृत हो गया हो, इसलिए शिष्य अभिवादन के समय अपना नाम लेकर ही प्रणाम करते थे। इसी प्रकार जिसको मधुपर्क कर दिया जाता है वह जानता है कि मधुपर्क दिया जा रहा है फिरभी विधान के अनुसार **'मधुपर्को मधुपर्कोमधुपर्कः प्रतिगृह्यताम्'**तीन बार मधुपर्क पद का उच्चारण कर के मधुपर्क दिया जाता है यह उसकी ओर

विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट दिया जाता है इसी प्रकार अपने कर्तव्य को जानने वाला 'होता' को जो '**अग्नये सामिध्यमानायानुब्रूहि**' आदि प्रेरणा की जाती है उसका आशय यह है यदि मन को किसीअन्य ओर चले जाने से उसको अपने का ध्यान न रहे तो उसी ओर उसका ध्यान दिलाया जाय। इस आधार पर मंत्रों को अनर्थक नही माना जा सकता है।

वेद मंत्र में'निऋत्या ' इस प्रकार का संहिता पाठ पाया जाता है, परन्तु पदपाठकार ने उसका पदच्छेद भिन्न भिन्न प्रकार से किया है। यह भेद निरूक्त के ज्ञान के बिना नही किया जा सकता है। निरूक्त के ज्ञान के बिना मंत्रो के अर्थ का ज्ञान नही हो सकता है, इसलिए पहले से ही वेद के दो प्रकार के पाठ पाये जाते है एक संहिता पाठ है और दूसरा पद पाठ। मंत्रो के पद पाठ के कर्ता शाकटायन माने जाते है। पदों को अत्यन्त मिला देने से संहिता बनती है। इसलिए संहिता पाठ के साथ पदपाठ का ज्ञान भी आवश्यक है और सारे वैदिक शाखाओं के पार्षद अर्थात प्रतिशाख्य जो कि उन शाखाओं के व्याकरण रूप है पदो के आधार पर ही चलते है इसलिए पद पाठ का ज्ञान आवश्यक है।वेद को पढ़ने के बाद वेद के अर्थ का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक बताया गया है अर्थ ज्ञान के बिना केवल वेद मंत्रो को कण्ठस्थ कर लेने, मात्र से कल्याण नही हो सकता है। अर्थ न जानकर केवल वेद को घोट लेने वाला व्यक्ति भारवाही गर्दभ के समान है इस प्रकार इसमें मंत्रार्थ को न जानने वाले अत्यन्त निन्दित बताया गया है और ज्ञान की प्रशंसा की गयी है। वेद के अर्थ का ज्ञान निरूक्त के बिना नही हो सकता है, इसलिए निरूक्त का पढ़ना अत्यन्त आवश्यक है । निरूक्त को पढ़कर और वेद के अर्थो को जानकर प्रशंसा प्राप्त करना अत्यंत आवश्यक है।वेद के अर्थ को न जानने वालेकी निंदा निम्नश्लोक की गयी है-

यद धीतमविज्ञातं निगदेनैव शब्द्यते।
अनग्नाविव शुष्कैधो न तज्वलति कर्ह्लिचित्।।

इस श्लोक में वेद के अर्थ को न जानने की निंदा की गयी है ।बिना अर्थ को समझे केवल वेद को कण्ठस्थ कर लेना व्यर्थ है। जैसे बिना अग्नि के सूखी से सूखी लकड़ी प्रज्वलित नही हो सकती हैं उसी प्रकार अर्थ ज्ञान के बिना वेद जैसी महत्वपूर्ण विद्या भी विफल व्यर्थ हो जाती है अतः वेदार्थ का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। अतः अज्ञानी होने की निंदा से बचकर वेदों के अर्थ ज्ञान की प्राप्ति करना निरूक्त शास्त्र का महत्वपूर्ण प्रयोजन है।

1.3.6 ज्ञान की प्रशंसा के विषय में अन्यवचन

अज्ञान की निन्दा एवं ज्ञान की प्रशंसा के विषय में जो उपर प्रमाण उद्धृत किये गये है। वे प्रमाण वेद मन्त्र न होकर कही अन्यत्र के श्लोक है। इसलिए अब वेइ के अर्थ के प्रशंसा के विषय में वे मन्त्र भी प्रस्तुत करते है। उनमे से पहला मन्त्र है -

उतत्त्वः पश्यन् न ददर्श वाचमुतत्वः श्रृण्वन् न श्रृणोत्येनाम्।
उतोत्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव पत्ये उशती सुवासाः ।।(ऋ0 १0-७१-४)

हाथ, पैर, कान, और आँख आदि अंगो वाले सभी व्यक्ति समान रूप् से ही अध्ययन करते हैं परंतु अन्य एक व्यक्ति वाणी को देखता हुआ भी नही देखता है और अन्य (दूसरा) सुनता हुआ भी नही सुनता है सुन्दर वस्त्र धारण करने वाली पति अभिलाषिणी पत्नी के समान यह वाणी इस (वेदार्थ को जानने वाले) के लिए अपने शरीर को अनावृत कर देती है अगोपनीय बना देती है, खोल देती है।

एक (वेदार्थ को न जानने) (इस वाणी का) देखता हुआ भी नही देखता है और एक (वेदार्थ को न जानने वाला व्यक्ति) इस वाणी को सुनता हुआ भी नही सुनता है अर्थात् उसका स्वंय अपनी आँखो से देखकर पढ़ना या गुरू मुख से याद करना सब व्यर्थ है। और जो अर्थ को समझने वाला है उसके लिए वाणी अपने स्वरूप को इस प्रकार से खोलकर रख देती है जैसे (ऋतुकाल में) कामयमान और सुन्दर वस्त्रों से सजी हुई पत्नी अपने पति के लिए सम्पूर्ण स्वरूप (शरीर को)

प्रकाशित कर देती है खोल देती है वस्त्र रहित हो जाती है। आधा पद्य कहता है।

1.4 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके हैं कि निरूक्त किसे कहते हैं तथा निरूक्त की आवश्यकता क्या है? वेदांगों में निरूक्त का महत्वपूर्ण स्थान है। वेदों के अर्थ के ज्ञान के लिए निरूक्त को पढ़ना महत्वपूर्ण माना गया है। कौत्स ने वेदार्थ का खण्डन करते हुए कहा है कि वेद के मंत्रो के उच्चारण करने मात्र से फल की प्राप्ति होती है। वेदों के अर्थ ज्ञान की कोई आवश्यकता नही है किन्तु निरूक्त के रचनाकार यास्काचार्य ने कहा है कि वेद मंत्रो के उच्चारण के साथ अर्थ ज्ञान अत्यन्त आवश्यकता है। निरूक्त तथा अर्थज्ञान की आवश्यकता है। निघण्टु में क्या अंतर इसे आप बता सकते हैं।

1.5 शब्दावली

इदमन्तरेण मंत्रेषु अर्थ प्रत्ययो न विद्यते = मन्त्रों का अर्थ का ज्ञान निरूक्त के द्वारा होता है। इदमन्तरेण विभागो न विद्यते (ज्ञायते) = निरूक्त के द्वारा ही किसी पद को विभिन्न खण्डों में बाटा जा सकता है।

शब्द	**अर्थ**
यद्धीतम्	जो पढा गया
अविज्ञातम्	न जाना गया

अवसाय	भोजन के लिए
अनग्नाविव	अग्नि रहित
न तज्ज्वलति	सूखी लकड़ी नहीजलती है
जलं	जल
आनय	लाओ
कुठार	कुदाल (मिट्टी खोदने वाला)
ओषधें	हे ओषधि
त्रायस्व	रक्षा करो
यूप	यज्ञ के खम्भा के लिए लकड़ी
पुरोडाश	हवन सामग्री
चक्षु	नेत्र
घ्राण	नाक
श्रोत्र	कान
पश्यन्न्	देखते हुए भी
न ददर्श	देखानही
वाचम्	वाणी के
तन्वं विसस्रे	शरीर को
सुवासा	सुन्दर वस्त्र धारण की हुई

1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

इस इकाई में वर्णित तथ्यों के अध्ययन के पश्चात् आप सभी अभ्यास प्रश्नों के उत्तर देनें का स्वयं प्रयास करें।

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. उमाशंकर शर्मा 'ऋषि' निरूक्तम् (यास्क प्रणीतम्) चौखम्भा विद्याभवनचौक (बनारस स्टेट बैकं के पीछे) पो. वा. नं. 1069 वाराणसी 221001

2. गोपाल दत्त पाण्डेय वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी भट्टोजिदीक्षित विरचित चौखम्भा सुर भारती प्रकाशन के 06/117 गोपाल मन्दिर लेनपो. वा0 नं. 1129 वाराणसी 221001

1.8 उपयोगी पुस्तकें

आचार्य विश्वेश्वर निरूक्तम् (श्री यास्काचार्य विरचित) ज्ञान मण्डल लिमिटेड वाराणसी 221001

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1 वेदार्थ की आवश्यकता एवं उसका फल बताएं।

2. निरूक्त का महत्व बताइये।

3. निरूक्त सम्बन्धित आचार्यो के मतो की विवेचना कीजिए।

इकाई2:शब्द कानित्यत्व एवं भावविकारों का विवेचन

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना

वैदिक साहित्य से सम्बन्धित यह द्वितीय इकाई है ।इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते हैं कि शब्द किसे कहते हैं ? शब्द की रचना किस प्रकार होती है तथा शब्द की आवश्यकता क्या है ? यास्काचार्य द्वारा रचित निरूक्त मेंशब्द नित्य हैं या अनित्य हैं, इस विषय में मन्थन किया गया है । तथा इनके महत्त्व के बारे में विशेष प्रकार सेबताया गया है।

यास्काचार्य द्वारा रचित निरूक्त में वेद के मन्त्रों के अर्थ व महत्त्वपर विशेष रूप से चर्चा की गयी है। भाव विकारों का भी विशेष रूप से विवेचन किया गया है। तथा वैयाकरणा आदि के अनुसार शब्द नित्य है या अनित्य इनके बारे में भी भली भाति विशेष रूप से चर्चा की गयी है। इस इकाई के अध्ययन से शब्द के नित्यत्वा नित्यत्व के बारे में आप भली भाति परिचित होंगे ।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् निरूक्त एवं वैयाकररण आदि के अनुसार शब्द के नित्यत्व एवं भावविकारोंसेपरिचित होगें।

- शब्द किसे कहते है ,इसका प्रतिपादन कर सकेंगे।
- शब्द की रचना एवं प्रकार के बारे में आप परिचित होंगे।
- यास्काचार्य के मत में शब्द अनित्य है इसके बारे में आप परिचित होंगे।
- शब्द को अनित्य मानने में तीन दोष उपस्थित होते हैं, इसके बारे तें आप परिचित होंगे।
- वैयाकरण आदि के मत में शब्द नित्य हैं, इसके बारे में आप परिचित होंगे।
- षड्भाव विकारों के विषय में आप परिचित होंगे।

2.3 निरूक्त एवं व्याकरण के अनुसार शब्द का नित्यत्व तथा भावविकारों का विवेचन

2.3.1 शब्द का प्रतिपादन

वर्णों के समुदाय को 'शब्द' कहते हैं शब्द अकेले या दूसरे शब्दों के साथ मिलकर अपना अर्थ प्रगट करते हैं। उनको हम दो रूपों में देखते है - एक तो अपना बिना मिला हुआ है जिसको हम संस्कृत में प्रातिपदिक कहते हैं। और दूसरा जो रूप हैं। वह कारक, लिगं, वचन, पुरूष और काल बताने वाले अंश को आगे - पीछे लगाकर बनाया जाता है जिसको हम पद कहते हैं। शब्दों की रचना ध्वनि और अर्थ के मेल से होती है। एक या अधिक वर्णो के मेल से बनी अर्थवान ध्वनि को शब्द कहते हैं लड़का, आ, वह, वे लोग इत्यादि। शब्द मूलतः दो प्रकार के होते हैं ध्वन्यात्मक और वर्णात्मक ।

किन्तु व्याकरण शास्त्र में ध्वन्यात्मक की अपेक्षा वर्णात्मक शब्दों का महत्व है। वर्णात्मक शब्दों में भी उन्हीं शब्दों का महत्व है जो अर्थवान है, जिनका अर्थ स्पष्ट और सुनिश्चित है। व्याकरण शास्त्र में अनर्थक शब्दों पर विचार नहीं किया जाता है। सामान्यतः शब्द दो प्रकार के होते हैं- 1. सार्थक 2. निरर्थक सार्थक शब्द अर्थवान होते हैं तथा निरर्थक शब्द अर्थवान नहीं होते हैं। जैसे फल शब्द अर्थवान है किन्तु 'लफ' शब्द अनर्थक है। क्योंकि इसका कोई अर्थ नहीं होता है।

2.3.2 शब्द की रचना एवं प्रकार

शब्दों अथवा वर्णों के मेल से नये शब्द निर्माणकी प्रक्रिया को रचना कहते हैं। अनेक वर्णो के मेल से शब्द बनता हैं। जैसे - राम शब्द में दो खण्ड हैं - राम' और 'म' इन दोनों अलग अलग वर्णो का कोई अर्थ नहीं है इसलिए यह अर्थवान नहीं है किन्तु राम शब्द अर्थवान है। इसके विपरीत कुछ ऐसे भी शब्द है जिनके दोनो खण्ड सार्थक होते हैं।

जैसे - गणेश इस शब्द के दो अंश है - गण और ईश ये दोनो अलग अलग अर्थवान हैं। इस प्रकार बनावट के विचार से शब्द के तीन प्रकार हैं - 1. रूढ़ 2. यौगिक 3. योगरूढ़।

2.3.2 .1 रूढ़ शब्द

जिन शब्दों के खण्ड सार्थक न हो उसे रूढ़ कहते है ; जैसे - नाक, हाथ, पैर, कान। यहाँ प्रत्येक शब्द के खण्ड - जैसे 'ना' और 'क' 'हा' और 'थ' ये सभी शब्द अनर्थक होते हैं।

2.3.2.2 यौगिक शब्द

ऐसे शब्द जो दो या दो से अधिक शब्दों के मेल से बनते हैं उन्हें यौगिक कहते हैं जिनका दोनों शब्द या खण्ड सार्थक होते हैं जैसें - आग-बबूला, मीठा-पान, खट्टा-पन, गाय-वाला इत्यादि यहाँ प्रत्येक शब्द के दो खण्ड है दोनों खण्ड सार्थक है।

योग रूढ़ -ऐसे शब्द जो यौगिक होते हुए भी अर्थ की दृष्टि से अपने सामान्य अर्थ को छोड़कर किसी परम्परा से विशेष अर्थ के परिचायक हों योग रूढ़ कहते हैं। अर्थात् यह यौगिक शब्द सामान्य अर्थ को छोड़कर किसी विशेष अर्थ को बताने लगते हैं उसे योग रूढ़ कहतें हैं ;। जैसें - लम्बोदर, गंगाधर, पंकज, पाणिपाद, चक्रपाणि इत्यादि पंक जायते इति पंकजः अर्थात् 'पकंज' अर्थ होता है कीचड़ मे उत्पन्न पर इससे केवल कमल ही अर्थ लिया जाता है। अतः पंकज योग रूढ़ है। इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी समझना चाहिए।

2.3.2.3 मूल शब्द

मूल या रूढ़ शब्द दूसरे शब्दों के मेल से नहीं बनते है; जैसे - हाथ, पैर, नाक, गला, कान, मुहँ, पेट इत्यादि। इन शब्दों के खण्ड सार्थक नही होते हैं। अतः ये मूल शब्द हैं।

2.3.2.4 उपसर्ग

'उपसर्ग' उस शब्दांश को कहते हैं जो किसी शब्द के पहले आकर उसका विशेष अर्थ प्रगट करता है उपसर्ग दो शब्दों (उपसर्ग) के मेल से बनता है। 'उप' का अर्थ होता है 'समीप' 'पास' या निकट में है। सर्ग का अर्थ होता है सृष्टि करना। उपसर्ग का अर्थ होता है। पास में बैठकर नयेअर्थवाले शब्द का निर्माण करना। 'हार'के पहले प्र उपसर्ग लगा दियर जाय, तो एक नया शब्द प्रहार का निर्माण होता है जिसका नया अर्थ होता है मारना। अपने अर्थों को छोड़कर किसी दूसरे अर्थो का प्रगट कराने लगता है उसे उपसर्ग कहते हैं।

2.3.2.5 प्रत्यय

शब्दों के बाद जो अक्षर या अक्षर समुदाय लगाया जाता है उसे प्रत्यय कहते हैं। प्रत्यय दो शब्दों के मेल से बना है - प्रति अय। प्रति का 'अर्थ साथ में' और अय का अर्थ 'चलने वाला ' है। अर्थात् प्रत्यय का अर्थ है शब्दों के साथ चलने वाला या लगने वाला। प्रत्यय उपसर्गों के समान अविकारी शब्दांश हैं, जो शब्दों के बाद जोड़े जाते हैं । पाणिनि ने भी सूत्रों मे कहा है प्रत्ययः परश्च' अर्थात् प्रत्यय पर में होते हैं।

2.3.3शब्द का नित्यत्वानित्यत्व विचार

शब्द के सम्बन्ध में यास्काचार्य ने एक विवाद पैदा करते है कि शब्द नित्य हैया अनित्य। यह विवाद केवलयास्काचार्य रचित केवल निरूक्त में ही नहीं, व्याकरण शास्त्र, न्याय शास्त्र तथा पूर्वमीमांसा शास्त्र मेंभी उठाया गया है।

यास्काचार्य ने निरूक्त में कहा है कि 'इन्द्रियमनित्यं वचनामौ दुम्बरायणः' औदुम्बरायण के मत में शब्द अनित्य हैं क्योंकि ये वचन (शब्द) इन्द्रिय में नियत है (अर्थात् जब तक बक्ता बोलता है तब तक वागिन्द्रिय में विद्यमान रहता है और उसी प्रकार श्रोता जब तक सुनता है तब तक श्रवणेन्द्रिय में विद्यमान रहता है। न उसके पहले था और न बाद को रहता हैं। चूंकि सभी दार्शनिक इन्द्रियों को अनित्य मानते हैं इसलिए उनपर आश्रित शब्द भी अनित्य ही माने जायेंगे। और शब्द को अनित्य मानने वाले पक्ष में तीन दोष उपस्थित होते हैं प्रथम दोष यह है कि पदों का जो चार प्रकार का विभाग किया गया है।

1. नाम 2. आख्यात 3. उपसर्ग 4. निपात ये चार प्रकार का विभाग नही बन सकता क्योंकि वर्णो का समुदाय पद ही नहीं बन सकता है तो चार प्रकार का पद इकट्ठे करना और उनका चार प्रकार का विभाग किया जाना सर्वथा असम्भव है यह पहला दोष था। अब दूसरा दोष दे रहे हैं - शब्द क्रमशः उत्पन्न होने वाले हैं अर्थात् क्षणिक एवं अनित्य हैं। वर्णो के क्रमशः नष्ट हो जाने के कारण शब्दों का एक दूसरे के साथ उपदेश अर्थात् सम्बन्ध भी नहीं बन सकता। तीसरा दोष यह आता है कि

शास्त्र के द्वारा किया गया प्रकृति प्रत्यय का सम्बन्ध भी अनित्य है इसलिए व्याकरण शास़्त्र में लिखा हुआ इनका संयोग भी नहीं होगा। इस प्रकार शब्दों के अनित्यत्व पक्ष में तीन दोष माने गये हैं।
इस प्रकार शब्द को इन्द्रिय में नियत अर्थात् अनित्य मानने में तीन दोष आ जाते है ऐसा कहा गया है। आगे इन तीनों दोषों का क्रमशः निवारण कर रहे हैं। इन तीनों दोषों के निवारण के लि 'व्याप्तिमत्वात्तुशब्दस्य' इस पंक्ति से शब्द की नित्यता के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं। तु शब्द पूर्व पक्ष की व्यावृत्ति के लिए है। शब्द व्यापक है क्योंकि कालिक व्याप्ति से युक्त होकर सभी कालों में व्याप्त या विद्यमान अर्थात् शब्दों और अर्थो की पृथक सत्ता वक्ता और श्रोता दोनों के मन में रहती है। शब्द को सुनने पर जो सुनता है वही अर्थ जागृत हो जाता है। भले ही उस समय तक शब्द की सत्ता न रहे। यही सिद्धान्त स्फोट कहलाता है जिसके अनुसार शब्द को नित्य माना गया है। शब्दों के नित्य होने से -

1. पदों के चार विभागों की अनुपपत्ति 2. गुण प्रधान-भाव की अनुपपत्ति तथा 3. प्रत्यय विभाग की अनुपपत्ति रूप जो तीन दोष दिये थे उन सबका निवारण हो जाता है। इस प्रकार निरूक्तकार तथा औदुम्बरायण के मत में शब्द अनित्य होते हैं। वैयाकरणों के मत में शब्द नित्य है।
कुछ विद्वान शब्द को नित्य मानते हैं और कुछ विद्वान शब्द को अनित्य मानते हैं। इसके विषय में पाणिन्यादि का क्या मत है ? इस गम्भीर प्रश्न का उत्तर भाष्यकार पतन्जलि ने स्वयं न देकर अपने समय के एक महान और प्रामाणिक 'सग्रंह नामक' ग्रन्थ के लिए छोड़ दिया है। उसी ग्रन्थ में नित्यत्व पक्ष को गुण और दोष तथा अंनित्यत्व पक्ष के गुण और दोष दोनों का सम्यक् परीक्षण किया गया है। वहाँ का निष्कर्ष यही है कि शब्द नित्य हो चाहे अनित्य, व्याकरणं शास्त्र का मुख्य प्रयोजन यह है कि शब्द के साधुत्व और असाधुत्व का ज्ञान करना है। वैयाकरण और मीमॉसक शब्द को नित्य मानते है।

वैयाकरण प्रारम्भ से ही शब्द को नित्य मानते रहे हैं। आचार्य व्याडि ने एक लाख श्लोकों वाले 'संग्रह' नामक ग्रन्थ में इस विषय की पर्याप्त समीक्षा कर के गुण दोष प्रदर्शित किये है। उसके अनुसार साधुत्व शब्द ज्ञान के लिए व्याकरण शब्द की उपयोगिता दोनों ही पक्षों में मान्य है।आचार्य पाणिनि भी शब्दों को नित्य मानते हैं।इनके अनुसार तो केवल शब्द ही नही अपितु शब्द, अर्थ और सम्बन्ध ये तीनों नित्य मानते है। कार्य शब्द वादी नैयायिकों को भी प्रवाह- नित्यता शब्द नित्य मानना चाहिए। अर्थ भी जाति रूप् होने से अथवा प्रवाह की नित्यता से नित्य ही होता है। जब शब्द और अर्थ ये दोनो सम्बन्धी नित्य ही होता है। तो इनका सम्बन्ध भी स्वतः नित्य है।

अतः पाणिनि शब्दार्थ संबन्ध के स्रष्टा नही है अपि तु सिद्ध शब्द के स्मारक आचार्य है। इसी बात को कात्यायन ने सबसे पहले अपने वार्तिक में लिखा है-शब्द भी सिद्ध हैं, अर्थ भी सिद्ध है और इनका सम्बन्ध भी सिद्ध है- ऐसा मानते हुए भगवान पाणिनि ने अपने व्याकरण शास्त्र की रचना की है।भर्तृहरि रचित वाक्यपदीय ब्रह्मकाण्ड में भी शब्द की नित्यता के विषय में लिखा है-

नित्या शब्दार्थ सम्बन्धास्तत्राम्नाता महर्षिभिः ।
सूत्राणामनु तन्त्राणां भाष्याणाम्च प्रणेतृभिः ।। 2।।

सूत्र के निर्माण कर्ता (पाणिनि) अनुतन्त्र (वार्तिक) का निर्माण करने वाले कात्यायन और भाष्यका निर्माण करने वाले (पतन्जलि) आदि महर्षियों ने शब्द अर्थ और उनके सम्बन्ध को नित्य स्वीकार किया है।

सूत्रकार पाणिनि ने - **'पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्'**इस सूत्र की रचना करके यह सिद्ध कर दिया है कि शब्दों की साधुता तथा लिंग और वचन के सम्बन्ध में जैसा लोक व्यवहार हो वैसा ही मानना चाहिए ।व्याकरण शास्त्र की रचना करने की प्रवृति से भी सिद्ध हो जाता है कि शब्द स्वभावत: साधु होते हैं।

वार्तिककार कात्यायन ने **'सिद्धे शब्दार्थ सम्बन्धे; सिद्धं तु नित्य शब्दत्वात्**, इन वार्तिकों के द्वारा शब्द, अर्थ और उनके सम्बन्ध को नित्य स्वीकार किया है।

भाष्यकार पतन्जलि ने भी - **संग्रहे एतत्प्राधान्येन परीक्षितम्, नित्यः शब्दः सर्वे सर्वपदादेशा दाक्षिपुत्रस्य पाणिनेः**,एकादेश विकारे ही नित्यत्वं नोपपद्यते।' इत्यादि वचनों के द्वारा शब्दों की नित्यता को स्वीकार किया है।

किसी वैयाकरण ने यह कह दिया कि शब्द नित्य हैं इससे शब्द नित्य नही माना जायेगा। अतः बिना किसी युक्ति या प्रमाण के द्वारा शब्द को नित्य नही माना जा सकता है। क्योकि यह उचित नही है, जैसे व्यन्जक ध्वनि की उत्पत्ति और विनाश को वर्णो में आरोप करने से ककार उत्पन्न हुआ नष्ट हुआ आदि प्रतीतियाँ होती है । इसीलिए 'शब्द मुच्चारयति' यह प्रतीति होती है, 'शब्दमुत्पायति' यह प्रतीति नहींहोती है। दूसरे दिन सुने गये गकार को पुनः गकार को कहने से यह स्मरण हो जाता है कि यह वही गकार है इस प्रत्यभिज्ञात्मक ज्ञान के कारण शब्द की स्थिरता उतने दिन तक मान लेने पर नाश कहना उचित नहीं है। अतः इस अनुमान के द्वारा शब्द को नित्य कहना उचित है। जिन लोगों ने वर्ण, पद, और वाक्य को अनित्य माना है वे भी अनादि संसार में वृद्ध व्यवहार परम्परा के लगातार बने रहने के कारण शब्दों की नित्यता को स्वीकार किया है। न्याय वार्तिककार ने कहा है कि 'वर्ण' नित्य हैं' यह व्यवहार तो परम्परा का लगा रहना बताता है जैसे 'पृथ्वी' नित्य है, पर्वत नित्य हैं।

अथवा **'जाम्याख्यामेकस्मिन् बहुवचनमन्यतरस्याम्, आकृत्युपदेशात् सिद्धम्'**इन सूत्रों और वार्तिकों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'शब्द नित्य है' इस वाक्य में शब्द पद से शब्द की आकृति विवक्षित है और व्याकरण शास्त्र इसी पक्ष को ध्यान में रखकर प्रवृत्त हुआ है। यह जाति नित्य होकर शब्द में रहती है इसलिए शब्द को नित्य माना गया है । घट शब्द के जाति के वाचक होने से भी सर्वदा अर्थ बोध नहीं होता क्योकि जाति अभिव्यक्त होकर ही अर्थ बोध करासकती है। इसे ही जातिस्फोट वाद कहते हैं । शब्द और अर्थ का सम्बन्ध भी नित्यहै वह सम्बन्ध इन्द्रिय और विषय के प्रकाश्य और प्रकाशक की भाँति योग्यता रूप और कार्यकारण भाव रूप है।

योग्यता किसी के मत में बोध जनकता रूप और किसी के मत में वाच्यवाचक भावरूप शक्तिग्राहक

तादात्म्य रूप है।

इस प्रकार शब्द अर्थ तथा उसके सम्बन्ध के नित्य होने के कारण व्याकरण शास्त्र की उपयोगिता इसलिए है कि श्रुति ने शास्त्र द्वारा प्रदर्शित विधि के स्मरण के साथ शब्द के प्रयोग से धर्मोत्पत्ति कहा है। 'एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः सु प्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुग्भवति' अर्थात एक ही शब्द का अच्छी तरह से ज्ञान प्राप्त करने तथा अच्छी तरह से प्रयोग करने से इस लोक तथा स्वर्ग लोक दोनों जगह पुण्य मिलता है।

शब्द नित्य है तब उनमें किसी भी काल मेंकोई विकार नही आ सकता अतः उनका ठीक ज्ञान प्राप्त करना और व्याकरण के द्वारा व्याख्या करना उचित है। शब्दों का साधुत्व दो प्रकार का होता है। एक तो साधु शब्दों का बताकर शेष शब्दों को असाधु कह देना और दूसरा असाधु शब्दों को बताकर शेष को साधु कह देना इन दोनो क्रमों में साधु शब्दों को बताना उचित है क्योकि व्याकरण शास्त्र का प्रयोजन है सरल उपाय से शब्द समुदाय का ज्ञान कराना साधु शब्दों की अपेक्षा असाधु शब्द ज्यादा है। जैसे एक गो शब्द के ही गाणी, गोणी, गोपतलिका इत्यादि अनेक अपभ्रंश शब्द हैं।

साधु शब्द के ज्ञान से धर्म की उत्पत्ति और अर्थ ज्ञान में सहायता मिलती है। वे ही शब्द पद और वाक्य, व्याकरण शास्त्र में लिंगो (पुल्लिंग, स्त्रीलिंग, नपुंसकलिंग) प्रकृति प्रत्यय और स्व शब्द से वर्णित है। अपने स्वरूप् ज्ञान के साथ पद और वाक्यों का ज्ञान कराते है ,पदरूप और वाक्यरूप, शब्द जो पदार्थो से विभक्त होते हैं वे अपोद्धार और जिनसे अर्थ का ज्ञान होता है वे प्रकृति और प्रत्ययकहलाते हैं, पद उनके अर्थ पदार्थ रूप अपोद्धार पदार्थ स्वरूप की रक्षा करते है वे स्थिति लक्षण अर्थ पदार्थ और वाक्यार्थ है।

अपोद्धार पदार्थ में दो पद है। प्रथम पद अपोद्धार का अर्थ है विभाग और दूसरे पदार्थ पद का। सुप्तिङन्तं पदम् सूत्र से परिभाषित अर्थ यही है।

2.4 वाक्यपदीय ब्रह्मकाण्डम् श्लोक २४ से २५

साधु शब्द और असाधु शब्दों से समानरूप से अर्थ ज्ञान होने पर भी शिष्टों के द्वारा प्राप्त व्याकरणागम से सिद्ध साधु शब्दों के प्रयोग से धर्म और असाधु शब्दों के प्रयोग से अधर्म की उत्पत्ति होती है।'**एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः शास्त्रान्वितः सु प्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुग् भवति**'। इस श्रुति के अनुसार साधु शब्द के ज्ञान से धर्म की उत्पत्ति होती है। और ''**तेऽसुरां हेलयो हेलय इति कुर्वन्तः परावभूवुः तस्मात्** ' इस श्रुति के द्वारा असाधु शब्द का ज्ञान अधर्म माना गया है अतः साधु शब्द का प्रयोग करना ही उचित माना गया है।

साधु शब्दों का ज्ञान व्याकरण शास्त्र के द्वारा ही हो सकता है। व्याकरण शास्त्र में भी यदि शब्द नित्य हो तो उनको भी साधुत्व कहना चाहिए। शब्दों की नित्यता के बारे में विद्वानो में अनेक मतभेद है कोई नित्य मानता है तो कोई अनित्य मानते हैं।

जैसे वैशेषिक दर्शन के आचार्य आत्मा को नित्य एवं कूटस्थ मानते ।इन्द्रिय को आत्मा मानने वाले चार्वाक दर्शन के आचार्य आत्मा को अनित्य मानने पर भी अनादि संसार प्रवाह को नित्य मानते हुए प्रवाह नित्यता मानते हैं।

2.5 भावविकारों का विवेचन

भाव - भवति इति भावः भावप्रधान अर्थात क्रिया की जिसमें प्रधानता हो उसे भाव प्रधान कहते हैं। भाव पद का अर्थ है क्रिया। पचति ,भवति, गच्छति, इत्यादि आख्यातपदों में क्रियांश की प्रधानता रहती है। इस प्रकार निरूक्त के रचयिता यास्काचार्य ने यह कहा है कि आख्यात में भाव अर्थात क्रिया की प्रधानता रहती है और नाम में अर्थात सत्व में लिगं कारक-सम्बन्ध -योग्यत्व रूप द्रव्य की प्रधानता होती है इसी बात को अधिक स्पष्ट करने के लिए यास्काचार्य ने लिखा है **'पूर्वापरीभूतं भावमाख्यातेनाचष्टे व्रजति, पचति इत्युपक्रमप्रभृति अपवर्गपर्यन्तम्।**

आगे पीछे किये जाने वाले आदि से लेकर अन्त तक (उपक्रम प्रभृति अपवर्गपर्यन्तम्) व्यापार समुदाय को जाता है पकाता है आदि आख्यात - पदों से कहा जाता है। अर्थात्'पचति',भवति, गच्छति इत्यादि पद एक क्रिया के रूप में प्रतीत होती है परन्तु मह वक क्रिया मात्र नहीं हैं, अपितु अनेक क्रियाओं का समुदाय रूप होती है 'पचति' इस एक क्रिया के अन्दर चूल्हा जलाने से प्रारम्भ कर के बटलोई रचना, दाल डालना , नामक डालना, हल्दी डालना, तेल इत्यादि डालना, पात्र से उसको बार बार चलना, बार बार देखना पक जाने के बाद चूल्हा से उतारने तक के सारे व्यापार आ जाते हैं। इसी प्रकार 'गच्छति' जाता है, यह देखने में एक क्रिया प्रतीत होती है, परन्तु गमनानुकूल जो व्यापार है उसके अन्दर जाने की तैयारी से लेकर उदिष्ट-स्थान पर पहुच जाने तक नाना प्रकार का व्यापार समहित हो जाते हैं इस लिए क्रिया व्यापार समुदायात्मक होती है इसी 'भाव' अर्थातृ क्रिया या व्यापार को पौर्वापर्य से रहित एकीभूत रूप में कहना होता है तब आख्यात (तिङ्) पद से न कहकर पक्ता, गतः, भूतः, इत्यादि कृदन्त नाम - पदों के द्वारा कहा जाता है। वैयाकरणो का भी यही सिद्धान्त है।

'कुदमिहितो भावो द्रव्यवत प्रकाशते'इस वचन का यही अभिप्राय है कि जब (भाव) अथवा क्रिया को कृदन्त नाम पदों से के द्वारा कहा जाता है त बवह क्रिया के रूप में नहीं अपि तु द्रव्य के रूप में कहा जाता है त बवह क्रिया के रूप में नहीं, अवि तु द्रव्य के रूप में प्रतीत होता है। द्रव्य के रूप में प्रतीत होने का अर्थ यह है कि उसके साथ लिगं, वचन, विभक्ति आदि का प्रयोग होने लगता है।

'मूर्तसत्वभूतं' इस वाक्य में सत्वभूतं पद में भूत पद सादृश्य का वाचक है, जैसे पितृभूतं में भूत सादृश्य का द्योतक है। इसी प्रकार 'सत्वभूत' का अर्थ द्रव्य के समान यह कहना चाहिए द्रव्य वाचक शब्द तीनों लिगों में होते हैं। अर्थात् कृदन्त पदों में लिगं संख्या आदि का सम्बन्ध हो जाता है

इसलिए उनको 'द्रव्य' अर्थात् द्रव्य शब्द के समान ही माना जाता है। अख्यात पदों से और कृदन्त पदों से कहे जाने वाले 'भाव' या क्रिया के इसी भेद को निम्न श्लोकों द्वारा निम्न प्रकार से दिखलाया जाता है -

क्रियासु बह्वीष्वमिसंश्रितों यः पूर्वापरीभूत इवैकएव।
क्रियाभिनिर्वृत्तिवशेन सिद्ध आख्यात शब्देन तमर्थमाहुः।।

अर्थात् अनेक क्रियाओं मे रहने वाला पूर्वापरीभूत व्यापार कलाप आख्यात पद के द्वारा कहा जाता है।

क्रियाभिनिर्वृत्तिवशोपजातः कृ दन्तशब्दभिहितो यदास्यात् ।
संख्याविभक्तिव्ययलिगंयुक्तो भावस्तदा द्रव्यमिवोपलेक्ष्यः ।।

अर्थात् वही भाव या व्यापार जब कृदन्त शब्दों के द्वारा कहा जाता है तब संख्या और विभक्तियों के परिवर्तन तथा लिगं आदि से युक्त होकर द्रव्य पदों के समान प्रतीत होता है। निरूक्त - 1-1

अर्थात् वही 'भाव' या व्यापार जब कृदन्त शब्दों के द्वारा कहा जाता है तब संख्या और विभक्तियों के परिवर्तन न तथा लिगं आदि से युक्त होकर द्रव्य पदों के समान प्रतीत होता है ।

यहाँ पर यास्काचार्य ने **'गच्छति''पचति**', भवति, ये आख्यात पद हैं और **'गतः' 'पक्तिः'**ये कृदन्त पद है आख्यात को तिङन्त कहते हैं । यहाँ पर आख्यात और तिडन्त दोनों का उदाहरण दिये है। ये दोनो उदाहरण सकर्मक धातुओं के हैं। सकर्मक उसे कहते हैं जिस धातु का फल और व्यापार दोनों अलग अलग हो, यथा- गच्छति कहने से गमनानुकून व्यापार कोई और कर रहा है और फल किसी और को मिल रहा है 'राम:ग्रामं गच्छति' यहाँ पर गमनानुकूल व्यापार राम कर रहा है और फल राम को मिल रहा है। इसी प्रकार 'रमेशः' तण्डुलान् ओदनं पचति' यहाँ पर पचनानुकूल व्यापार रमेश कर रहा है और फल तण्डुल को मिल रहा है इसी लिए ये दोनो उदाहरण सकर्मक का है। परन्तु उनमें से एक 'कर्तृस्थभावक' और दूसरा 'कर्मस्थभावक' है। जहाँ पर क्रिया का फल कर्ता में समाप्त हो जाता है, वह कर्तृस्थभाव क्रिया कहलाती है। यहाँ **'गच्छति'**क्रिया **'कर्तृस्थभावक**' है, क्योकि देवदन्त के गमन से कर्मभूत जो ग्राम है उस ग्राम में कोई परिवर्तन नही होता है। पचति क्रिया के कहने से कर्मभूत जो तण्डुल में विक्लिति रूप परिर्वन होता है इसलिए यह कर्मस्थभावक क्रिया है। अकर्मक धातुओं में कर्म नही होता है। जैसे 'रामः शेते' यहाँ पर शयनानुकूल जो व्यापार कर रहा है, वह राम कर्ता के अन्दर हो रहा है तथा फल भी राम को ही मिल रहा है इसीलिए यह अकर्मक है। यहा **'गच्छति' 'पचति'**दोनो में कर्म होने से कर्तृस्थ भावक एवं कर्मस्थ भावक है।

भावविकार

मुख्य रूप से छः प्रकार के क्रिया के भेद (विकार) माने गये हैं। यह आचार्य वार्ष्यायणि का मत है ।
1. 'जायते = उत्पन्न होता है, **2. अस्ति** = रहता है, **3. विपरिणमते** = परिवर्तित होता है, **4. वर्धते** = बढ़ता हैं, **5. अपक्षीयते** = क्षीण होता है, और **6. विनश्यति** = नष्ट होता है।यही छः प्रकार के भावविकार है।

1.**जायते** - उत्पन्न होना वस्तु के प्रथम आविभग्न (पैदा होना) आरम्भ को सूचित करता है आने वाली जो बाद की क्रियायें हैं न उनको कहता है और न निषेध करता है।

2.**अस्ति -** यह उत्पन्न हुए पदार्थ की स्थिति को कहता है। अर्थात् उत्पन्न होने वाली वस्तु की सत्ता मालुम होती है।

3.**विपरिणमते** - परिवर्तित (वदलना) से तत्वकानाश हुए बिना उसमें होने वाले परिवर्तन को कहता है।

4.**वर्धते** - वृद्धि दो प्रकार की होती है। एक तो अपने शरीर की वृद्धि अथवा दूसरी सांयागिक (बाहरी) पदार्थो की जैसे शरीर बढ़ रहा है , यह सांयोगिक अर्थो की वृद्धि है।

5.**अपक्षीयते** इसी को उलटा कर देने से क्षीण होने की व्याख्या भी समझनी चाहिए।

6.**विनश्यति** - विनाश अन्तिम क्रिया के आरम्भ को कहता है पूर्व क्रिया को नही कहता है न उसका निषेध करता है।

मुख्यरूप से क्रियाके छः भेद माने गये है । इनसे भिन्न दूसरी क्रियाओं के सम्पूर्ण भेद निष्पद्यते विकसति, पच्यते इत्यादि इन के ही भेदों में आ जाते है। ऐसा बार्ष्यायिणि का मत है।

2.4 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके हैं कि शब्द किसे कहते हैं। शब्द की आवश्यता क्या है ? शब्दों की रचना ध्वनि और अर्थ के मेल से होती है। एक मा अधिक वर्णो के मेल से बनी अर्थवान ध्वनि को शब्द कहते हैं। मूलतः शब्द दो प्रकार के होते है ध्वन्यात्मक और वर्णात्मक शब्दों का अधिक महत्व है। वर्णात्मक में भी उन्ही शब्दों का महत्व है जो अर्थवान हैं व्याकरण शास्त्र में अनर्थक शब्दों पर विचार नहीं किया जाता है। इस इकाई में निरूक्तकार और दुम्बरायण शब्द को अनित्य मानते है किन्तु वैयाकरण शब्द को नित्य मानते हैं। नित्यानित्य का वर्ण करते हुए षड्भाव विकारों का भी वर्णन इस इकाई में किया गया है।

2.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
लम्बोदर	लम्बा पेटवाला
पंकज	कमल
पाणिपाद	हाथ पैर
सृष्टि	पैदा होना
शब्दार्थ	शब्द और अर्थ
नित्य	शाश्वत

साधु शब्दः	शुद्ध शब्द
असाधु शब्दः	अशुद्ध शब्द
संग्रहे	संग्रह में
दाक्षि पुत्रस्य	दाक्षि के पुत्र का
विकारे	विकार में
नोपपद्यते	नहीं कहा जा सकता
शब्दमुत्पादयति	शब्द को उत्पन्न करता है।
विवक्षित	कहने की इच्छा
शक्ति	अर्थ
जाति	समुदाय
व्यक्ति	समुदाय में से एक
घट	घडा
बोध जनकता	ज्ञानजनक
शक्ति ग्राहक	अर्थ को ग्रहण करने वाला
आकृति	स्वरूप
श्रुति	वेद
एकः	एक
सम्यग्	अच्छी प्रकार से
ज्ञातः	जाना गया
स्वर्गे	स्वर्ग में
लोके	लोक में
स्फोट	ध्वनि जिससे अर्थ की प्रतीति हो

2.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

(1) लधु - उत्तरीय प्रश्न

1. शब्द किसे कहते है ?
2. वाक्य किसे कहते है ?
3. शब्द कितने प्रकार के होते हैं?
4. ध्वनि को क्या कहते है ?
5. सामान्यत शब्द कितने प्रकार के होते हैं ?
6. रचना किसे कहते हैं ?
7. योगरूढ़ किसे कहते है ?
8. मूल शब्द का उदाहरण क्या है ?

9. उपसर्ग किसे कहते हैं?

10. प्रत्यय किसे कहते हैं?

(2) बहुविकल्पात्मक प्रश्न

1. वर्णों के समुदाय को कहते हैं -

(क) शब्द (ख) अर्थ

(ग) सम्बन्ध (घ) शक्ति

2.मूलतः शब्द कितने प्रकार के होते हैं -

(क) तीन (ख) चार

(ग) दो (घ) एक

3. यास्काचार्य के मत में शब्द हैं -

(क) नित्य (ख) अनित्य

(ग) नित्य अनित्य दोनों (घ) नित्य अनित्य दोनों नहीं

4. वैयाकरणों के मत में शब्द है -

(क) अनित्य (ख) नित्य

(ग) नित्यानित्य दोनों (घ) नित्यानित्य दोनों नहीं

5. साधु शब्दों का ज्ञान किस शास्त्र के द्वारा होता है -

(क) न्याय शास्त्र (ख) व्याकरण शास्त्र

(ग) दर्शन शास्त्र (घ) साहित्य

6. भावविकार कितने प्रकार के होते हैं -

(क) तीन (ख) चार

(ग) पाँच (घ) छः

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. उमाशकरं शर्मा 'ऋषि' निरूक्तम् (यास्कप्रणीतम्)
चौखम्भा विद्याभवनचौक (बनारस स्टेट बैकं के पीछे)पो. वा. नं. 1069 वाराणसी 221001

2. गोपाल दत्त पाण्डेय वैयाकरण सिद्धान्त कौमुेदी भट्टोजिदीक्षित विरचितचौखम्भा सुरभारती प्रकाशनके 06/117 गोपाल मन्दिर लेन।पो. वा0 नं. 1129 वाराणसी 221001

2.8 उपयोगी पुस्तकें

आचार्य विश्वेश्वर निरूक्तम् (श्रीयास्काचार्य विरचित)ज्ञानमण्डल लिमिटेड वाराणसी 221001

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भाव विकारों का विवेचन कीजिए।

2. निरूक्त पर एक विस्तृत निबन्ध लिखिए।

3 .यास्काचार्य का परिचय दीजिए।

इकाई 3: निरूक्त के अनुसार शब्दों का विभाजन, भाव एवं सत्व का स्वरूप

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 निरूक्त के अनुसार शब्दों का विभाजन, भाव एवं सत्व का स्वरूप

3.4 सारांश

3.5 शब्दावली

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.8 उपयोगी पुस्तकें

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

वैदिक साहित्य से सम्बन्धित यह तीसरी इकाई है। इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते हैं कि निरूक्त के अनुसार शब्द कितने प्रकार के होते हैं ? प्रत्यक्षवृत्ति शब्द किसे कहते हैं? परोक्ष वृत्ति शब्द किसे कहते है ? इन प्रश्नों के उत्तर आपको इस इकाई से प्राप्त होंगे ।

यास्काचार्य द्वारा रचित निरूक्त में पृषोदरादि गण में पठित शब्द किसके समान समझे जाते हैं इसके बारे में आप भली - भाँति परिचित होंगे। उपसर्ग क्या है? उपसर्ग कितन प्रकार के होते हैं उपसर्ग का प्रयोग कहाँ किया जाता है,इसके बारे मेंआप विशेष रूप से परिचित होगे।

निपात का अर्थ क्या है ,निपात किसे कहते हैं? निपात कितने प्रकार के होते हैं? इस सन्दर्भ में आप अवगत हो सकेंगे ।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् यास्काचार्य के द्वारा रचित निरूक्त के अनुसार शब्दों के विभाजन भाव एवं सत्व के स्वरूप के बारे में जानते हुए आप -

- निरूक्त के अनुसार शब्द कितने प्रकार के होते हैं, इसकाप्रतिपादन आप कर सकेंगे।
- प्रत्यक्ष वृत्ति शब्द क्या है ? इसका विश्लेषण आप कर सकेंगे।
- परोक्ष वृत्ति शब्द किसे कहते है ? इसका विश्लेषण आप कर सकेंगे।
- आख्यात क्या है ? इसका विश्लेषण आप कर सकेंगे।
- नाम क्या है ? इसका लक्षण क्या है इसका विश्लेषण आप कर सकेंगे।
- उपसर्ग क्या है ? इसका विश्लेषण आप कर सकेंगे।

3.3 निरूक्त के अनुसार शब्दों का विभाजन भाव एवं सत्व का स्वरूप

शब्द क्या है? तथा वे कितने प्रकार के मुख्य रूप से होतें हैं , इन सबका वर्णन दूसरी इकाई मेंकिया गया है। इस इकाई में निरूक्त के अनुसार शब्दों के विभाजन पर प्रकाश डाला गया है । निरूक्त के अनुसार शब्दों का विभाजन तीन प्रकार से किया गया है -

1. प्रत्यक्ष वृत्ति
2. परोक्ष वृत्ति
3. अतिपरोक्ष वृत्ति

1.प्रत्यक्ष वृत्ति

जिनमें धातु और प्रत्यय आदि का विभाग स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है उनको प्रत्यक्ष वृत्ति शब्द कहते हैं। जैसे पाचकः पच् धातु (पकाने के अर्थ)में ण्वुल् तृचौ सूत्र से ण्वुल् प्रत्यय् होकर पच् +ण्वुल बना। णकार तथा लकार दोनों की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर पच् वु बना। वु के स्थान में युवोरनाकौ सूत्र से अक् प्रत्यय होकर पच्अक बना। अत उपधायाः सूत्र से ण में जो आकार है उसकी वृद्धि आकार होकर पाच्अक बना । पुन: वर्ण सम्मेलन होकर पाचक बना। प्रथमा विभक्ति एक वचन की विवक्षा में सुप्रत्यय होकर पाचकसु बना। उकार की इत्संज्ञा तथा सकार को रूत्व विसर्ग होकर पाचकः प्रयोग बनता है।

कारक

कृ धातु करने अर्थ में ण्वुल्तृचौ सूत्र से ?ण्वुल् प्रत्यय होकर कृ+ण्वुल् बना ण्कार ल् कार की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः सूत्र से लोप होकर कृवु बना । युवोरनाकौ सूत्र से वु के स्थान में अकं होकर कृअक बना। ठाकार की इत्सज्ञा होने से अचोणिति सूत्र से कृ में जो ऋकार है उसकी वृद्धिआर होकर क्आरअक बना। वर्ण सम्मेलन होकर कारक की निष्पत्ति । सु रूत्व विसर्ग होकर कारकः बना है। इसी प्रकार हृ धातु से ण्वुल् प्रत्यय होर हारकः प्रयोग बनता है। इसी प्रकार अन्य प्रयोग भी समझना चाहिए। इन्हीं शब्दों को प्रत्यक्ष वृन्ति शब्द कहते है। क्यों कि जिनमें धातु और प्रत्यय का विभाग स्पष्ट रूप से प्रतीत होता हो तो ‘प्रत्यक्ष वृति रूप‘कहा गया है। जैसे पाचकः का अर्थ है पकाने वाला इसमें धातु है ‘पच्‘ प्रत्यय है ‘ण्वुल‘ ये धातु तथा प्रत्यय दोनों मिलकर पाचकः बना है। इसमें धातु और प्रत्यय का स्पष्ट रूप से प्रतीत होने के कारण प्रत्यक्ष वृत्ति शब्द कहा जाता है। जिन शब्दों में धातु-प्रतयय आदि का विभाग उतना स्पष्ट नहीं होता है, उनको परोक्ष वृन्ति शब्द कहते हैं और जहाँ धातु प्रत्यक्ष आदि का विभाग बिल्कुल प्रतीत नहीं होता, सर्वथा कल्पना से प्रतीत होता है उनको अतिपरोक्ष वृ त्ति शब्द कहते हैं।

परोक्षवृत्ति शब्दों का भी प्रयोग सरलता से हो सकता है, परन्तु अतिपरोक्षवृत्ति शब्दों के प्रयोग में बहुत कठिनाई होती है। इसलिए उनके प्रयोग के विषय में यह सिद्धान्त स्थिर किया गया है कि अतिपरोक्षवृत्ति शब्द को पहिले 'परोक्षवृत्ति’ और फिर प्रत्यक्षवृत्ति बनाना चाहिए। अथवा दूसरी ओर से देखे तो पहिले प्रत्यक्षवृत्ति और 'परोक्षवृत्ति’ रूप देकर तक अतिपरोक्ष वृत्ति रूप देना चाहिए। इस प्रकार का क्रम बनाने से इसका अब भावार्थ स्पष्ट हो जाता है।इस नियम को मानकर के यहा निघण्टु शब्द का निर्वचन किया गया है। निधन्तु शब्द 'अतिपरोक्ष’ वृत्ति है । निघण्टु शब्द उसका परोक्षवृत्ति रूप है। और निगम उसका प्रत्यक्ष वृत्ति रूप है। निघण्टु के जो शब्द है। वह निश्चित रूप से वेद के अर्थ का ज्ञान कराने वाले हैं। इसलिए वे निगम कहलाते हैं। निगम शब्द का अर्थ और धातु प्रत्यय का विभाग स्पष्ट होने से वह प्रत्यक्षवृत्ति रूप शब्द हैं। उससे परोक्षवृत्ति निघण्टु रूप और उसका अर्थ सरलता से समझ लिया जाता है। फिर उसके द्वारा उसके अतिपरोक्षवृत्ति शब्द निघण्टु

का अवयवार्थ भी स्पष्ट रूप से समझ मेंआ जाता है। इसलिए अतिपरोक्षवृत्ति शब्दों के निवर्चन में इस प्रक्रिया का आश्रय लिया गया है।

शब्दों की व्याकरणादि शास्त्रों में प्रधानता

'प्रत्यक्षवृत्ति' 'परोक्षवृत्ति' और 'अतिपरोक्षवृत्ति' इन तीन प्रकार के शब्दों का जो विभाग किया गया है। वे केवल निरूक्त में ही नहीं अपितु सर्वत्र माना जाता है पर उनके नाम और जगह भिन्न हैं। साहित्य आदि शास्त्रों में जो रूढ यौगिक,योग रूढ़ नाम से शब्दों को तीन प्रकार से विभाग किया गया है उसी शब्दों को यहाँ पर 'प्रत्यक्षवृत्ति' 'परोक्षवृत्ति' और अतिपरोक्षवृत्ति नामों से कहा जाता है । इन तीन प्रकार के शब्दों में से व्याकरण शास्त्र को क्षेत्र सामान्यतः प्रत्यक्ष वृत्ति अर्थात् यौगिक शब्दों तक सीमित है । अष्टाध्यामी के सूत्र किसी धातु से अथवा किसी प्रातिपदिक से किसी विशेष प्रत्यय का विधान कर शब्द की सिद्धि करते है। जिन पदों में यह प्रकृति और प्रत्यय का विभाग स्पष्ट रूप से दिखायी देता है वे ही प्रत्यक्षवृन्ति या यौगिक पद कहे जाते हैं। अष्टाध्यामी के सूत्रों या व्याकरण के नियमों के अनुसार बनने वाले सभी पदों में प्रकृति प्रत्यय का विभाग प्रायः स्पष्ट हो जाता हैं। इस लिए वे सब प्रायः प्रत्यक्ष वृत्ति शब्द होते है । उन प्रत्यक्ष वृत्ति शब्दों में व्याकरण स्वयं अर्थ की प्रधानता को मानकर तदनुसार ही प्रकृति प्रत्यय की योजना करता है।

2.परोक्ष वृत्ति

अष्टाध्यायी के आधार पर संस्कृत भाषा की सिद्धि हो जाती है। फिर भी भाषा का बहुत बड़ा भाग ऐसा रह जाता है, जो अष्टाध्यायी के सूत्रों के नियन्त्रण में नही आता है। ऐसे शब्द विभाग के लिए पाणिनि मुनि ने उणादयो बहुलम् (३.३.१) सूत्र लिखकर इस प्रकार के शब्दों को अष्टाध्यामी के सूत्रों के बन्धनों मुक्त कर दिया है। इस प्रकार के शब्दों में मुख्यरूप से परोक्ष वृत्ति तथा सामान्य रूप अन्य शब्दों का अन्तर्भाव होता है। पाणिनि मुनि के इस उणादयोबहुलम् सूत्र की पूर्ति शाकटायन प्रणीत पाँच पादों में विभक्त किये हुए उणदि सूत्रों के द्वारा होती है इन इत्यादि सूत्रों के द्वारा जिन शब्दों की सिद्धि होती है, उनमे भी प्रकृति प्रत्यय का विभाग तो होता है, परन्तु वह उतना अधिक नियमों से बधा हुआ नहीं है जितना अष्टाध्यायी के सूत्रों के द्वारा किया जाने वाला विभाग। इसलिए हम उनको परोक्षवृत्ति शब्द कह सकते हैं।

उणादि शब्दों की सिद्धि के विषय में सामान्य नियम का प्रतिपादन करते हुए महाभाष्यकार ने लिखा है कि –

''संज्ञासु धातुरूपाणि प्रत्ययाश्च ततः परे।
कार्मद्विद्यादनुबन्धमेतच्छास्त्रमुणादिषु॥''

इसका अभिप्राय यह हुआ कि परोक्ष वृत्ति संज्ञा शब्दों अर्थात् रूढ़ पदो में धातु का अर्थ क्या है,

उससे पर कौन सा प्रत्यय हुआ है और उस प्रत्यय के अन्त में लुप्त होने वाला ‘अनुबन्ध’ कौन सा है, इस बात को कार्य के द्वारा अर्थात् प्रयोग के द्वारा जानना चाहिए अर्थात् उणादि से सिद्ध होने वाले पदों में धातु, प्रत्यय अनुबन्ध आदि की कल्पना आवश्यकता के अनुसार की जाती है। अष्टाध्यायी जैसे कठोर अनुकरण वहाँ सम्भव नहीं है। इस प्रकार कठोर बन्धनों से मुक्त कर दिया है इसलिए उनमे भी व्याकरण की उपयोगिता हो जाती है।

3. अतिपरोक्ष वृत्ति

उपर दिखलाया गया है कि शुद्ध व्याकरण अथवा अष्टाध्यायी के क्षेत्र मे प्रायः प्रत्यक्षवृत्ति शब्द ही आते हैं। परोक्षवृत्ति शब्द प्रायः शिथिल - व्याकरण अर्थात् उणादि के क्षेत्र में आते हैं। उनमें व्याकरण का नियन्त्रण शिथिल पड़ जाता है। और आवश्यकता के अनुसार धातु, प्रत्यय, अनुबन्ध आदि की अर्थानुसारिणी कल्पना को व्याकरणानुमोदित अवकाश मिल जाता है । पर इन दोनों प्रकार के शब्दों से भिन्न तीसरे प्रकारके शब्द और है जिनको अतिपरोक्षवृत्ति शब्द कहते है। पाणिनि ने इनको उणादि के क्षेत्र से अलग करके ’पृषोदरादि’ के क्षेत्र में रखा है और उनमें प्रकृति प्रत्यय आदि की चिन्ता बिना किये ही 'पृषोदरादीनियथोपदिष्टम् (६-१-१०१) सूत्र लिखकर वे जिस रूप में लोक में प्रयुक्त होते है उसी रूप में ज्यों का त्यों उनको सिद्ध मान लिया है। इस प्रकार के पदों में अर्थ की प्रधानता को ध्यान में रखकर आवश्यकता के अनुसार वर्ण का आगम वर्ण का विपर्यय अर्थात् पौर्वापर्य रूप क्रम का परिर्वतन, वर्ण का लोप और वर्णका विकार अर्थात किसी वर्ण के स्थान पर अन्य वर्ण का आदेश आदि अनेक प्रकार के परिवर्तन हो जाते है। जैसे मेध का वाचक ’बलाहक’ शब्द लोक में प्रचलित हैं। इस शब्द में कोई प्रकृति प्रत्यय का कोई विभाग प्रतीत नहीं होता हैं। इस लिए यह 'अतिपरोक्षवृत्ति' शब्द कहा जाता है। वह न अष्टध्यायी के नियमों के बन्धन में आता है और न उणादि के क्षेत्र में आता है। वह इस पृषोदरादि गण के क्षेत्र से सम्बन्ध रखता है। इस लिए उसके अर्थ की प्रधानता का ध्यान रखकर वारिवाहक शब्द से उसके ’बलाहक’ रूप की सिद्धि की जाती है। इसमें पूर्व पद 'वारि’ के स्थान पर ’ब’ और उत्तर पद के ’वा’ के स्थान पर ला आदेश होकर 'वारिवाहकः’ रूप बनता है।

पृषोदरादिगण आकृति गण है। पृषोदर शब्द के समान सभी अतिपरोक्ष वृत्ति शब्दों का उसमें अन्तभाव हो जाता है। पृषोदरादिगण में किस प्रकार के शब्दों को लिया जाना चाहिए, इसका प्रतिपादन करते हुए महाभाष्यकार ने लिखा है -

''येषु लोपागमवर्णविकाराः भूयन्ते न चोच्यन्ते तानि पृषोदरादि प्रकाराणि ।''

अर्थातृ जिसमे लोप आगम वर्णविकार अर्थात् आदेश क्रम-विपर्यय आदि सुनाई देते है, किन्तु किसी सूत्र के द्वारा उनका विधान नहीं किया जाता है, वे शब्द पृषोदरादिगण के समान समझे जाते है। इसके अनुसार निघण्टु आदि जो शब्द है वे शब्द पृषोदरादिगण के अन्तर्गत हो जाते हैं। इस लिए यास्काचार्य ने निघण्टु शब्द की व्युत्पत्ति व्याकरणानुमोदित किया है।यास्काचार्य द्वारा रचित

निरूक्त का क्षेत्र यही से प्रारम्भ होता है। प्रत्यक्ष वृत्ति शब्द अष्टाध्यायी के क्षेत्र में आते हैं। जिसमें प्रकृति प्रत्यय का विभाग होने पर भी स्पष्ट सा प्रतीत होता है। उस प्रकार के 'परोक्ष वृत्ति' शब्द उणादि गणके क्षेत्र मे आते हैं । और जहॉं प्रकृति प्रत्यय का विभाग बिल्कुल प्रतीत नहीं होता है, वर्णो का लोप, आगम, वर्ण विकास, अर्थात् आदेश क्रम-विपयर्य आदि दिखलाई देता हैं, परन्तु किसी सूत्रादि से उसका विधान नहीं मिलता हैे, वे सब शब्दअतिपरोक्षवृत्ति ' शब्द निरूक्त के क्षेत्र में माने जाते हैं। व्याकरण मे ये शब्द पृषोदरादिगण के क्षेत्र में माने जाते है । सूत्र की व्याख्या में लोप, आगम, वर्णविकार आदि का उदाहरण - सहित प्रदर्शन करते हुए लिखा है -

भवेद् वर्णागद्धंसः सिंहो वर्णविपर्ययात।
गूढ़ोत्मा वर्णविकृतेवर्णनाशत् पृषोदरम्।(गणवार्तिकम्)

और यहीं पद्धति निरूक्त की है। निर्वचन प्रक्रिया का प्रतिपादन करते हुए लिखा है -

वर्णागमो वर्णविपर्ययइच दौ चापरौ वर्णविकार नाशौ।
धातोस्तर्थातिशयेन योगः तदुच्यते पन्चविधं निरूक्म्।।(दुर्गाचार्यवृत्ति)

निरूक्त प्रक्रिया और पृषोदरादि प्रक्रिया के प्रतिपादन इन दोनों श्लोको की तुलना करने से स्पष्ट हो जाता है कि वे दोनों प्रक्रियाएँ एक ही है। पृषोदरादि प्रक्रिया को पाणिनि मुनि ने अपने शास्त्र के अन्तर्गत रखने का प्रयत्न किया है। परन्तु वस्तुतः वह उनका अपना क्षेत्र नहीं है, निरूक्त का क्षेत्र है। उसे हम व्याकरण की सीमा कह सकते हैं।

भाव एवं सत्त्व का स्वरूप

व्याकरण आदि शास्त्रों में लौकिक शब्दों को चार वर्गो में विभाजित किया गया है। 1. नाम, 2. आख्यात, 3. उपसर्ग 4. निपात ।

इसी प्रकार निघण्टुमें संग्रहीत वैदिक शब्द भी चार वर्गो में विभक्त किये जा सकते हैं। इनमें से पचति, गच्छति, पठति आदि आख्यात (तिङ्) पदों में क्रिया के अंश की प्रधानता रहती है। और उसी पच् धातु से कृदन्त में पाकः आदि नाम' पदों क्रिया गौण होकर द्रव्याश की प्रधानता हो जाती है। इसलिए निरूक्तकार यास्काचार्य ने आगे 'भावप्रधानमाख्यातम्' और सत्त्व प्रधानानि नामानि ये नाम और आख्यात के लक्षण किये हैं । 'भाव प्रधानम्' में'भाव' पद का अर्थ ' क्रिया' है। पचति, गच्छति, आदि आख्यात (तिङ्) पदों में क्रिया अंश की प्रधानता रहती है। 'सत्त्व प्रधानानि' मेंसत्व' शब्द का अर्थ क्रिया से भिन्न द्रव्य है। पाकः, गतिः, आदि 'नाम' पदों में, पुलिगं, स्त्रीलिगं, नपुंसकलिंग तथा कारक विभक्तियों का योग रहता है । इसी लिंग - कारकादि-सम्बन्ध -योग्यत्व को में सत्त्व या द्रव्यांश की प्रधानता रहती है। इसी बात को ग्रन्थकारयास्काचार्य इस प्रकार लिखते हैं। - 'तद्यान्येतानि' इत्यादि।दूसरे स्थान पर नाम का लक्षण निम्न प्रकार से किया गया है।

शब्देनोच्चारितेनेह येन द्रव्यं प्रतीयते।
तदक्षरविधौ युक्तं नामेत्याहुर्मनीषिणः।।
अन्यत्र भी 'नाम' का लक्षण इस प्रकार पाया जाता है -
अष्टौ यत्र प्रयुज्यन्ते नानार्थिषु विभक्तयः।
तन्नाम कवयः प्राहुर्भेद वचनलिगंयोः।।

'भाव प्रधानमाख्यातम्' सत्व प्रधानानिनामानि ' इस पंक्ति की व्याख्या अन्य प्रकार से भी की गयी है। उनका स्थान है कि भाव, काल, कारक, अथात् पुरूष और संख्या ये चार आख्यात के अर्थ होते है। इन चारों में से 'भाव' सबसे प्रधान अर्थ है, इसलिए आख्यात को भाव प्रधानमाख्यातम कहा गया है। इसी प्रकार सत्ता, द्रव्य, संख्या, और लिगं मे चार 'नाम' के अर्थ माने गये हैं। इन चारों में सत्ता प्रधान नामार्थ होता है, इसलिए सत्व प्रधानानिनामानि पद कहा गया है। दूसरे स्थान पर नाम, आख्यात, उपसर्ग ओर निपात चारों प्रकार के पदो का लक्षण एक ही श्लोक में नीचे दिया गया है।

''क्रियावाचकमाख्यातमुपसर्गो विशेष कृत।
सत्वाभिधायकं नाम निपातः पादपूरणम्।।''(दुर्गाचार्यवृत्ति)

नाम और आख्यात गुणप्रधान भाव

इस वाक्य का अभिप्राय यह है कि प्रत्येक वाक्य में नाम और आख्यात, संज्ञा और क्रिया या कर्ता और क्रिया बोधक पद अवश्य रहते हैं । ये दूसरे शब्दों में उद्देश्य और विधेय पदों से भी कहे जाते हैं। नाम उद्देश्य और क्रिया विधेय होती है। बिना उद्देश्य और विधेय के कोई वाक्य नहीं बन सकता है। वाक्य में विधेयांश की सदा प्रधानता रहती है। जहाँ विधेयांश की प्रधानता किसी कारण से नष्ट हो जाती है। उस वाक्य में अविमृष्ट - विधेयांश या विधेयाविमर्श दोष आ जाता है। जिसे साहित्य शास्त्र में एक बड़ा दोष माना गया है। वाक्य का क्रियापद सदा विधेय भाग में ही जाता है, इस लिए वाक्य में सदा क्रिया की प्रधानता मानी जाती है।

शाब्दबोध के विषय में मतभेद

निरूक्तकार ने यहाँ वाक्यार्थ-बोध में आख्यातार्थ क्रिया की प्रधानता का जो प्रतिपादन किया है। वह मीमांसक सिद्धान्त के अनुसार है, परन्तु वैयाकरणों तथा नैयायिकों का विचार इससे भिन्न है ,शाब्दबोध के विषय में वैयाकरणों, नैयायिकों तथा मीमांसकों ने विशेष रूप से विचार किया है। उनमें से वैयाकरण शाब्दबोध मे धात्वर्थ की प्रधानता मानते हैं, परन्तु नैयायिक प्रथमान्त मुख्य विशेष्यक शाब्दबोध मानते हैं। अर्थात उनके मत में वाक्य में आख्यातार्थ अथवा क्रिया की प्रधानता नहीं होती है, अपि तु वाक्यमें जो प्रथमान्त पद होता है उसका अर्थ मुख्य रहता है,तीसरे विचार के मीमांसक है। उनके मत में शाब्दबोध में आख्यातार्थ भावना की प्रधानता रहती है।

वैयाकरण के मत में शब्दबोध

'देवस्तः पचति' इस वाक्य में वैयाकरणो के मत में"देवस्ताभिन्न कर्तृकः वर्तमानकालिकः पाकानुकूलो' व्यापार इस प्रकार का शाब्दबोध होता है। इसमें धात्वर्थका क्रिया रूप जो व्यापार है, वह मुख्य विशेष्य है। वाक्य के शेषभाग उसके विशेषणमात्र है शेष भाग मे दवस्तः पद है। उसका अर्थ 'देवस्ताभिन्न कर्तृकः' इस रूप में व्यापार: का विशेषण हो जाता है। और पचति में जो तिप् है वह वर्तमानकाल तथा संख्या या एकवचन रूप अर्थ वर्तमान कालिकः इस रूप में व्यापारः का विशेषण बन जाता है। फलतः वैयाकरण मत में वाक्य में धात्वर्थ या व्यापारकी प्रधानता रहती है। इसलिए उसके मत में धात्वर्थ मुख्य विशेष्यकः शाब्दबोध होता है।

नैयायिकों केमत में शाब्दबोध

नैयायिकों केमत में देवस्तः पचति इसी वाक्य से वर्तमानकालिकपाकानुकूल व्यापारवान् देवस्तःइस प्रकार का शाब्दबोध होता है। इसमें वाक्य का प्रथमान्त 'देवस्तः' पद मुख्य विशेष्य है और धातु तथा प्रत्यय दोनों का अर्थ उसमें आश्रय सम्बन्ध से विशेषण होने से गौण हो जाता है। इस लिए नैयायिक मत में प्रथमान्तार्थमुख्य विशेष्यक शाब्दबोध माना जाता है।

मीमांसक मत में शाब्दबोध

शाब्दबोध के विषय में तीसरा मत मीमांसको का है। उनके के मत में वाक्य में भावना की मुख्यता होती है। 'भावना' का लक्षण उनके यहाँ 'भवितुर्भावनानूकुलो व्यापार विशेषो भावना इस प्रकार किया गया है। यह भावना दो प्रकार की मानी जाती है। शाब्दी भावना दूसरी आर्थी भावना। किसी फल की कामना से जो क्रिया या व्यापार किया जाता है। वह आर्थी भावना कहलाती हैं। और पुरूष प्रवृत्त कराने वाला वेदादि का व्यापार शाब्दी भावना नाम से कहा जाता है। वेद विहित यागादि कार्यो में मनुष्य को प्रवृत्त करने वाला व्यापार किसी मनुष्य में नही अपितु वेद के शब्दों मे रहता है। इस लिए उनका नाम 'शाब्दीभावना' है। स्वर्ग आदि फल की प्राप्ति के लिए जो यत्न मनुष्य करता है। वह आर्थी भावना कहलाती है। ये दोनों प्रकार की भावनाएँ प्रत्ययंश से बोधित होती है। यजेत आदि प्रयोगों के दो अंशहै, एक सामान्य रूप से आख्यातत्व और दूसरा लिङ् लकार होने से लिङ्त्व। इन में लिङ् अंश होने से शाब्दी-भावना बोधित होती है और सामान्य आख्यातांश से 'आर्थीभावना' आख्यातांश से बोधित होने वाली यही 'भावना' प्रधान शाब्दबोध मानी जाती है।

द्रव्य और क्रिया के निर्देश के दो प्रकार

पूर्वापरीभूत व्यापार कलाप को आख्यात पद के द्वारा कहा जाता है तथा एकीभूत व्यापार को कृदन्त नाम पदों के द्वारा कहा जाता है। अब आगे यह बतलाते हैं कि इन 'सत्व' और भाव दोनों को

सामान्य रूप से तथा विशेष रूप से दो प्रकार से निर्दिष्ट किया जा सकता है । द्रव्यों को सामान्य रूप से निर्देश 'अदस्' 'इदम्' आदि सर्वनामों के द्वारा किया जा सकता है। 'गौः' 'अश्व' आदि विशेष नाम देकर लेकर उनका विशेषरूप से निर्देश किया जाता है।

उपसर्ग - निरूपण

नाम, आख्यात, उपसर्ग, निपात रूप में शब्दों के जो चार विभाग किये गये हैं, उन चार प्रकार के शब्दों में से नाम तथा आख्यात का विवेचन उपर कर दिया गया है। अब यहाँ उपसर्गो के बारे में विवेचन कर रहे हैं -

प्रादयः' उपसर्गाः ! क्रिया योगे (अष्टाध्यायी १.४.५८ तथा ५९) सूत्रों के अनुसार क्रिया के योगे में १.प्र, २.परा, ३. अप, ४. सम, ५. अनु, ६. अव, ७. निस्, ८. निर, ९. दुस्, १0. दुर, ११. वि, १२. आङ्, १३. नि, १४. अधि, १५. अपि, १६. अति, १७. सु, १८. उत्, १९. अभि, २0. प्रति, २१. परि तथा २२. उप इन २२ की उपसर्ग संज्ञा होती है। इन बाईस उपसर्गो का अपना अर्थ है या नहीं इस विषय में दो प्रकार के मत पाये जाते हैं । कुछ लोग उपसर्गो को 'वाचक' मानते हैं और कुछ वाचक न मानकर द्योतक मानते हैं । वाचक पक्ष में उपसर्गो का अपना अर्थ होता है और वे उस अर्थ के वाचक होते है। यह मत नैरूक्तो में गार्ग्य का है शाकटायन उपसर्गों को वाचक न मानकर द्योतक मानते हैं। द्योतक-पक्ष में उपसर्गो का अपना अर्थ नहीं होता है। वे जिसके साथ मिलते हैं उसके अर्थ में विशेषता का बोध कराते हैं। दार्शनिकों में नैयायिक तथा मीमांसक दोनो उपसर्गो को द्योतक और निपातों को वाचक मानते हैं। वैयाकरण उपसर्ग और निपात के बीच इस प्रकार के भेद नहीं मानतें हैं। वे उपसर्ग और निपात दोनों को द्योतक मानते हैं। भर्तृहरि ने अपने वाक्यपदीय ग्रन्थ में मध्यमार्ग अपनाकर वाचक तथा द्योतक दोनों पक्षोंमें अपनी सहमति प्रगट करते हुए लिखा है -

स वाचको को विशेषाणां सम्भवाद्द्योतकाऽपिवा।

उपसर्ग के अर्थ का निरूपण

इस प्रकार नैरूक्त गार्ग्य के मत में उपसर्ग द्योतक नही अपि तु वाचक है। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए यास्काचाग्र ने नैरूक्त होने स्वयं भी उस सिद्धान्त के साथ अपना सहमति प्रगट की है। इस लिए निरूक्त मत में उपसर्गों का सिद्धान्त ही माना गया है। इस प्रसंग में यास्काचार्य ने उपसर्गों के केवल एक एक अर्थ का प्रतिपादन किया है। परन्तु उनके अतिरिक्त भी उपसर्गों के अनेक अर्थ होते हैं।यास्काचार्य ने यहाँ केवल उदाहरण के रूप में उनके एक अर्थ का प्रदर्शन किया है।

'आ' उपसर्ग के समीप या 'अर्वाग्' अर्थमें प्रयोग का वैदिक उदाहरण 'सर्वेनन्दन्ति यशसा आगतेन' यश को प्राप्त करके सबको प्रसन्नता होती है 'प्र' और 'परा' उपसर्ग इसके विपरीत अर्थ को कहते हैं , इसका वैदिक उदाहरण 'याश्चदूर परागताः है । अर्वाक् शब्द का अर्थ यहाँ समीप ही करना चाहिए।

प्राचीन टीकाकारों में केवल एक सकन्द स्वामी ने 'अर्वागर्थः सन्निकर्षः' लिखकर अर्वाक शब्द का अर्थ सन्निकर्ष या सामीप्य किया है। दुर्गाचार्य ने अवाक् शब्द का कोई अर्थ नही किया है। परन्तु उसका उदाहरण आपर्वतात दिया है। परन्तु यहाँ आ का अर्थ सामीपय नही मर्यादा है। 'आङ्' का प्रयोग मर्यादा और अभिविधि अर्थो में भी होता है । 'मुक्तेः संसारः' यह मर्यादा का उदाहरण है मुक्ति प्र्यन्त संसार है। मुक्ति उस संसार में सम्मिति नही है मुक्ति से पहिले - पहिले तक संसार रहता है। मुक्ति होने पर संसार नहीं रहता है। 'आबालं हरि स्नेहः' बालकों पर्यन्त कृष्ण के प्रति स्नेह है। यहाँ कृष्णके स्नेह की सीमा बालकों को कहा है। परन्तु बालक उससे अलग नहीं है। बालकों मे भी हरि स्नेह पाया जाता है।यह इसका अर्थ है, इस लिए यहाँ 'आ' अभिविधि के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इन दोनों उदाहरणों में'आङ्मर्यादाभिविंध्यों इस सूत्र से पन्चम्यन्त मुक्तेः तथा बालकेभ्यः पदों के साथ आङ् का अव्ययीभावसमास हुआ है।

निपातों का निरूपण

नाम, आख्यात, उपसर्ग, निपात रूप में शब्दों के जो चार प्रकार के विभाग किये हैं, उन चार प्रकार के शब्दों में से नाम, आख्यात, तथा उपसर्ग, इन तीनों शब्दो का निरूपण उपर कर दिया गया है अब चतुर्थ शब्द निपात का वर्णन करने जा रहे है । निपातों का वर्णन भिन्न-भिन्न अर्थो में प्रयोग होता है इसलिए इसे निपात कहते है। नि उपसर्ग पूर्वक पद गतौ धातु ज्वलतिकसन्तेभ्योणः इस सूत्र से कर्ता अर्थ में ण प्रत्यय होकर निपात् बना। णकार की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर निपत्अ अत उपधायाः सूत्र से आदि अच् को वृद्धि होकर तथा वर्ण सम्मेलन होकर निपात प्रयोग बनता है निपातों की संख्या बहुत अधिक है । अष्टाध्यायी में प्राग्रीश्वरानिपाताः सूत्र से निपात का अधिकार प्रारम्भ होता है, और अधिरीश्वरे सूत्र तक जाता है। इनमें मुख्य रूप से चादयोऽसत्वे और 'प्रादयश्च' इन सूत्रों के अनुसार चादि तथा प्रादि गण पठित शब्दों की निपात संज्ञा होती है। प्रादिगण पठित शब्द तो २२ ही है और उनकी निपात संज्ञा होती है परन्तु चादिगणबहुत लम्बा है। उसमे २०७ शब्दों का संग्रह किया हैकिया गया है। उन सब शब्दों के अर्थो का विवेचन किया गया है। विवेचन के सौकर्य के लिए उन्होनें निपातों का तीन वर्गो में वर्गीकरण किया है।

1. उपमानार्थक
2. कर्मोपसंग्रहार्थक निपात और
3. पादपूरक निपात ।

वैयाकरण लोग उपसर्गों के समान निपातों को भी द्योतक मानते हैं, वाचक नहीं । नैयायिक उपसर्गो को द्योतक मानते हैं, परन्तु निपातों को वाचक मानते है। नैरूक्त निपातों तथा उपसर्ग दोनो को वाचक मानते हैं । इसलिए यास्काचार्य कुछ निपातों के अर्थों का वर्णन कर रहे हैं ।

1. उपमार्थ निपात

उपभार्थक'इव' शब्द के उदाहरण लोक और वेद दोनों मे समान रूप से पाये जाते है। वेद में **'अग्निरिव मन्यो त्विषितः सहस्व'** में यहा अग्निरिव अर्थात् अग्नि के समान यहा उपमा का प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार 'इन्द्र इव ' यह उपमा भी वेद में **'इन्द्र इवेह ध्रुवस्तिष्ठ'**मे पायी जाती है। इसलिए 'इव' निपात के उपमार्थ में प्रयोग के लिए ये दोनों उदाहरण लोक ओर वेद में समान रूप से माने जाते हैं । परन्तु यास्काचार्य नं 'इव' शब्द को यहा मुख्य रूप से वैदिक उदाहरणो के रूप में ही प्रस्तुत किया हैं उपमार्थक निपातों में इव शब्द के बाद दूसरा स्थान 'न' निपात का है । 'न' यह निपात लोक में निषेध के अर्थ में पयुक्त होता है उपमा के अर्थ में नहीं । परन्तु वेद में'न' निषेध तथा उपमा दोनों अर्थो मेंप्रयुक्त होता है।

'इव' ओर 'न' इन दोनों निपातो का उदाहरण वेद मन्त्र से यास्काचार्य न उद्धत किये हैं । परन्तु'चित्' निपात के तीनों अर्थो में केवल लौकिक उदाहरण ही यास्काचार्य ने दिये है। वैदिक उदाहरण दिये जाते तो अच्छा रहता । उपमा अर्थ में'चित्' के प्रयोग के कुमारश्चित पितरं वन्देमानम् ' पिता की वन्दना करते हुए कुमार के समान आदि अनेक वैदिक उदाहरण मिल सकते है। पर कदचित् निन्दा तथा प्रशंसा अर्थ में वैदिक उदाहरण नही मिलसकते, इसलिए यास्काचार्य ने उसके सभी लौकिक उदाहरण दे दिये है।

3.4 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके है कि निरूक्त के अनुसार शब्दों का विभाजन कितने प्रकार से किया गया है ? प्रत्यक्ष वृत्ति शब्द किसे कहते है ? परोक्षवृत्तिशब्द किसे कहते हैं ? अतिपरोक्षवृत्ति शब्द किसे कहते है। व्याकरणादि शास्त्रों में लौकिक शब्दों को चार वर्गो मे विभाजित किया गया है नाम, आख्यात, उपसर्ग, निपात, । इनमें पचति, गच्छति, इत्यादि आख्यात है पच्धातुसेपाकः कृदन्त के द्वारा बनता है इसलिए यह 'नाम' पद से कहा जाता है। इसलिए गच्छति, पचति को भाव क्रिया कहा जाता हैं 'नाम' पद को द्रव्य कहा जाता है । इसी प्रकार उपसर्ग तथा निपातों का भी वर्णन किया है।

3.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
पचकः	पकाने वाला

पचति	पकाता है
गच्छति	जाता है
कारकः	करने वाला
शब्देन	शब्द के द्वारा
उच्चारितेन	उच्चारण से
येन	जिसके द्वारा
द्रव्यम्	द्रव्य
प्रतीयते	प्रतीत होता है
मनीषिणः	मनीषी लोग
प्रयुज्यन्ते	प्रयोग किये जाते हैं
कवयः	कवि लोग
विभक्तयः	विभक्तियॉं
नानार्थेषु	नाना अर्थों में
निपात	में जो प्रयोगहोता है
देवदन्त पचति	देवदत पकाता है।
धात्वर्थः	धातु का अर्थ
यज	देवताओं की पूजा
सन्निकर्ष	सन्निकटता
सामीप्य	समीपता
इव	समान या सदृश
उपमार्थ	उपमा अर्थ के लिए
अग्निरिव	अग्नि के समान
इन्द्र इव	इन्द्र के समान
गौः	गाय
अश्व	घोड़ा
अवाक्	समीप
आबानम्	बालकों पर्यन्त
आमुक्तेः	मुक्ति पर्यन्त

अभ्यासार्थ प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1.निरूक्त के अनुसार शब्द कितने प्रकार के होते हैं?

2.प्रत्यक्ष वृत्ति शब्द किसे कहते हैं?

3.परोक्ष वृत्ति शब्द किसे कहते हैं?

4.अतिपरोक्षवृत्ति शब्द किसे कहते हैं?

5.पृषोदरादि गण के शब्द किसके समान समझे जाते हैं?

6.नाम का लक्षण किस प्रकार से किया गया है ?

7.निपात संज्ञा किसकी होती है ?

8.निपातों को कितने वर्गो में वर्गीकृत किया गया है ?

9.वेद में'इव' शब्द का क्या अर्थ होता है ?

10.'न' शब्द का क्या होता है ?

बहुविकल्पात्मक प्रश्न

1.जिसमें धातु और प्रत्यय का विभाग स्पष्ट रूप से प्रतीत होता हो उसे कहते हैं-

(क) प्रत्यक्षवृत्ति (ख) परोक्ष वृत्ति

(ग) अतिपरोक्षवृत्ति (घ) यौगिक शब्द

2.निघण्टु आदि जो शब्द हैवह किसके अन्तर्गत हो जाते हैं -

(क) आकृति गण (ख) चादिगण

(ग) निपातादिगण (घ) भ्वादिगण

3व्याकरण आदि शास्त्रों में लौकिक शब्दो को कितने वर्गो विभाजित किया गया है -

(क) तीन वर्गो में (ख) चार वर्गो में

(ग) चार वर्गो (घ) एक वर्गो में

4.उपसर्ग कितने प्रकार के होते हैं -

(क) चार प्रकार के (ख) बाइस प्रकार के

(ग) दश प्रकार के (घ) पन्द्रह प्रकार के

5.नैरूक्त गार्ग्य केमत में उपसर्ग द्योतक है या वाचक

(क) द्योतक (ख) वाचक

(ग) द्योतक वाचक दोनों (घ) द्योतक वाचक दोनों नहीं

3.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.उमाशकरं शर्मा 'ऋषि' निरूक्तम् (यास्कप्रग्रीतम्)चौरबम्भा विद्याभवनचौक (बनारस स्टेट बैकं के पीछे) पो. वा. नं. 1069 वाराणसी 221001

2.गोपाल दत्त पाण्डेय वैयाकरण सिद्धान्त कौमूदी भट्टोजिदीक्षित विरचितचौखम्भा सुर भारती प्रकाशनके 06/117 गोपाल मन्दिर लेनपो. वा0 नं. 1129 वाराणसी 221001

3.7 उपयोगी पुस्तकें

आचार्य विश्वेश्वर कृत निरूक्तम् (श्रीयास्काचार्य विरचित)ज्ञानमण्डल लिमिटेड वाराणसी 221001

3.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1 शब्दों के विभाजन एवं प्रकार पर एक निबन्ध लिखिए।

इकाई 4: निरूक्त के प्रथम अध्याय के तृतीय पाद पर्यन्त भाग की व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना

वैदिक साहित्य से सम्बन्धित यह चतुर्थ इकाई है। इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते हैं कि यास्काचार्य द्वारा रचित निरूक्त के प्रथम अध्याय के प्रथम पाद में मूल रूप से किसका वर्णन किया गया है इस पाद मे मूलरूप से निघण्टु किसे कहते हैं? निघण्टु की व्युत्पत्ति किस प्रकार से होती है ? एवं निघण्टु की सिद्धि किस प्रकार से होती हैं ? इन सबके बारें में आप भली भाँति परिचित होंगे।

प्रथम पाद में लोक एवं वेद में पद कितने प्रकार के होते है उन सबका वर्णन इस इकाई में की गयी है। किन्तु चारों पदों में से इस पाद में नाम आख्यात उपसर्ग इन तीनो ही पदो की व्याख्या की गयी है।

इस इकाई में निरूक्त के प्रथम अध्याय के प्रथम पाद द्वितीय पाद एवं तृतीय पाद की व्याख्या की गयी है द्वितीय पाद एवं तृतीय पाद से निपात का वर्णन किया गया है इनके बारे मे आप भली भाँति परिचित होगे।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप निरूक्त के प्रथम अध्याय के तृतीय पाद पर्यन्त भाग की व्याख्या कर सकेंगे।

- निघण्टु किसे कहते हैं? निघण्टु की व्युत्पत्ति क्या है ? इसके बारें में बताएंगे।
- निघण्टु शब्द की सिद्धि किस प्रकार से होती है इसके बारे में आप परिचित होगें।
- निघण्टु के प्रथम अध्याय के प्रथम पाद मे किसका वर्णन किया गया है इसके बारे में आप समझाएंगे।
- उपसर्ग क्या है, इसके बारे में आप परिचित होगें।
- निपात क्या है इसके बारे में आपभली भांतिबताएंगे।
- निरूक्त के प्रथम अध्याय के द्वितीय पाद एवं तृतीय पाद में किसका वर्णन किया गया है इसके बारे में आप भली भांति परिचित होकर व्याख्या कर सकेंगे।

4.3 निरूक्त -प्रथम अध्याय - तृतीय पाद पर्यन्त भाग की व्याख्या

सामाम्नायः समाम्नातः, स व्याख्यातव्यः।

गो शब्द से लेकर देव पत्नी पर्यन्त १७७३ शब्दों का समाम्नाय: = वैदिक शब्द कोशष् समाम्नातः = बनाया जा चुका है, अब उसकी व्याख्या होनी चाहिए। इसलिए अब निरूक्त ग्रन्थ की व्याख्या की जा रही है।

तमिमं समाम्नाय निघन्तव अत्याचक्षते।

इस प्रसिद्ध वैदिक शब्द कोश को कुछ लोग निघण्टु कहते हैं।

निघन्तवः कस्मात् ?

प्रश्न- निघण्टु कैसे कहा जाता है?

निगमा इमे भवन्ति छंन्दोभ्य: समाहृत्य समाहृत्य समाम्नात।

उत्तर - क्योंकि ये निश्चित रूप से वेदार्थ के ज्ञान कराने वालें होते हैं।

त इमें निगन्तव एव सन्तो निगमनान्निघन्टव उच्यन्त इत्यौपमन्यवः।

ये प्रसिद्ध वैदिक शब्द निश्चयेन वेदार्थं गमयन्ति इस व्युत्पत्ति के अनुसार निश्चय पूर्वक वेदार्थ के बोधक होने के कारण निगन्तु होकर ही निघण्टु कहलाता है। यह निघण्टु के प्राचीन व्याख्याकार उपमन्यु के अनुयायी मानते हैं।

इस प्रकार निघण्टु-शब्द की यह एक प्रकार की व्युत्पत्ति दिखलायी है। इसमें नि उपसर्ग पूर्वक गम्लृ गतौ धातु से तुन् प्रत्यय तथा अनुबन्ध लोप होकर नि गम् तु बना । ग के स्थान पर घ तथा त के स्थान पर ट होकर नि घम्टु बना। मकार को अनुस्वार तथा पर सवर्ण होकर निघण्टु शब्द की शब्द की सिद्धि होती है।

अपि वा आहन नादेव स्युः, समाहता यद्वा समाहृता भवन्ति

अथवा आङ् उपसर्ग पूर्वकहन् धातु से तुन प्रत्ययतथा अनुबन्ध लोप करने पर आ हन्तु ह के स्थान पर घ तथा त के स्थान पर ट होकर एव आ के स्थान पर नि उपसर्ग होकर निधन्तु शब्द की सिद्धि होती है।अथवा निघण्टु के शब्दवेद के मन्त्रों में से चुने हुए हैं। इसलिए सम् आङ् तथा वर्णो का विपर्यय होकर निघण्टु शब्द बनता हैं।

तद्यानयेतानि चत्वारि पदजातानि नामाख्याते च, उपसर्ग निपाताश्च , नामानि भवन्ति।

उनमें (लोक में) जो ये चार नाम , आख्यात, उपसर्ग, और निपात रूप चार प्रकार के पद प्रसिद्ध हैं, वे ही अर्थात् उसी प्रकार से चार वर्गो मे विभक्त निधन्तु के ये वैदिक पद भी होते हैं।

तत्रैतन्नामाख्यातयोर्लक्षणं प्रतिशन्ति - भावप्रधानमाख्यातम्' 'सत्व प्रधानानि नामानि'।

चार प्रकार के लौकिक पद जो कहे गये है ,जिसमें क्रिया की प्रधानता हो वह आख्यात पद है, और जिसमे लिगं - कारकादि-सम्बन्ध को सत्त्व या द्रव्यांश कहते हैं, उसी द्रव्यांश को नाम पद से कहा जाता है।**तद्यत्रोभे भाव प्रधाने भवतः।**

जिस वाक्य मेंनाम और आख्यात अर्थात संज्ञा लिग कारकादि सम्बन्ध योग्य या कर्ता और क्रिया दोनों हो वहा भाव अर्थात क्रिया की प्रधानता होती है।

पूर्वापरीभूतं भावमाख्या तना चष्टे व्रजति पचतीत्युपक्रमप्रभृत्ययवर्गपर्यन्तमृ।

आगे पीछे किये जाने वाले आदि से लेकर अन्त तक व्यापार-समुदाय को आख्यात पद से कहा जाता है'। जैसे - 'जाता है' 'पकाता है' खेलता है। आदि।

मूर्तसत्वभूतं सत्वमामभिव्रज्या पक्तिरिति।

ठोस अर्थात सिद्ध किया (सत्त्व) के रूप में परिणत (भाव) को सत्त्व के नाम से पुकारते है। जैसे व्रज्या व्रज्गतौ धातु से व्रज्या कृदन्त से बनता है। उसी प्रकार कृदन्त में पच् धातु से पक्ति: बनता है।

अद इति सत्वानामुपदेशो गौरश्णः पुरूषौ हस्तीति।
भवतीति भावस्य , आस्ते शेते व्रजति, तिष्ठतीति

'अदः' अर्थात् अदस् इदम् आदि सर्वनाम पदो के द्वारा सत्त्व अर्थात् द्रव्यों का समान्य रूप से निर्देश किया जाता है। और 'गौ' , 'अश्व', पुरूष हस्ति आदि संज्ञावाचक वाचक पदों द्रव्यों का विशेष रूप से निर्देश किया गया है।

इसी प्रकार भवति पद से भूधातु का ग्रहण करना चाहिए। भाव अर्थात क्रिया का सामान्य रूप से तथा आस्ते, शेते, व्रजति, तिष्ठति आदि पर से क्रिया का निर्देश होता है। **षड् भावविकारा भवन्तीति वार्ष्यायणिः**।मुख्य रूप सें क्रिया के छः भेद होते हैं यह वार्ष्यायणि का मत है।

जायते, अस्ति, विपरिणमते, वर्धतें, अपक्षीयते विनश्यति।

१. जायते = उत्पन्न होता है, २. अस्ति = रहता है, ३. विपरिणमते = परिवर्तित होता है, ४. वर्धते = बढ़ता है, ५. अपक्षीयते = क्षीण होता है , और ६. विनश्यति = नष्ट होता है।

जायत इति पूर्वभावस्यादिमाचष्टे न प्रतिषे धति।

१. उत्पन्न होना वस्तु के प्रथम आविर्भावके आरम्भ को सूचित करता है, बाद की क्रियाओं को न कहना और न निषेध करता है।

आस्तीत्युत्पन्नस्य सत्त्वस्यावधारणम्।

२. यह उत्पन्न हुए पदार्थ की स्थिति को कहता है।

विपरिणमते इत्स प्रच्यवमानस्य तत्त्वद्विकारम् ।

३. विपरिणाम तत्त्व का नाश हुए बिना उसमें होने वाले परिवर्तन को कहता है।

वर्धत इति स्वागभ्युच्चयं सांयोशिकानां वार्थनम्म्। बर्धते शरीरेण वर्धते विजयेनेति (बर्धते विजयेनेति वा वर्धते शरीरेणेति वा)

४. वृद्धि दो प्रकार की होती है। एक तो अपने शरीर की वृद्धि । दूसरी सांयोगिक (बाहरी) पदार्थो की वृद्धि । जैसे शरीर से बढ़ रहा है औरविजय से बढ़ रहा है यह सांयोगिक अर्थो की वृद्धि है।

अपक्षीयत इत्येते नैव व्याख्यातः प्रतिलोमम् ।
विनश्यति इत्यपरभावस्यादिमाचष्टे न पूर्वाभावमाचष्टे न प्रतिषेधति।

६. **विनाश** अन्तिम क्रिया के आरम्भ को कहता है पूर्व क्रिया को न कहता है न उसका निषेध करता है।

अतोन्ये भावविकारा एतेषामेव विकारा :भवन्तीति ह स्माह ते यथावचनमभ्यूहितव्या:।
मुख्य रूप से ये छः क्रिया के भेद होते हैं। इनसे भिन्न दूसरी क्रियाओंके सारे भेद निष्पद्यते, विकसति पच्यते आदि, इनके ही भेदों में आ जाते हैं।
उनको यथोक्तरीति से छः भीतरसमझ लेना चाहिए।इन्द्रियनित्यं वचनमौदुम्बरायण:
वचन अर्थात् शब्द इन्द्रिय में नियत है क्योकि जब तक वक्ता बोलता है तब तक उसकी बागिन्द्रिय में और जब तक श्रोता सुनता है तब तक श्रवणेन्द्रिय में विद्यमान रहता है इसलिए शब्द अनित्य है, यह औदुम्बरायण का मत है।

तत चतुष्ट्वं नोपपद्यते अयुगदुत्पन्नानां वा शब्दानांमितरेतरीपदेश: शास्त्र मृतों योगश्च।

वहा शब्द को अनित्यत्व मानने वाले पक्ष में तीन दोषडपस्थि होता है। पहला दोष यह है कि नाम, आख्यात, उपसर्ग, और निपात रूप से शब्दों को जो चार प्रकार का विभाग किया गया है, वह चार प्रकार का विभाग नहीं बनता क्योकि जब तक वर्ण समुदायात्मक पद ही नहीं बनता है तब चार पद इकट्ठे होकर उनका चार प्रकार का विभाग किया जाना सर्वथाअस्भ्भव है। शब्द को अनित्यत्व मानने पक्ष में दूसरा दोष यह है कि शब्द क्षणिक उत्पन्न होते है और तुरन्त नष्ट हो जाते है इसलिए एक दूसरे का उपदेश ही नहीं बनता है । तीसरा दोष यह आता है कि शास्त्र के द्वारा प्रकृति प्रत्यय का सम्बन्ध ही नही बन पाता।

व्याप्तिमत्त्वान्तु शब्दस्य

शब्द लाघव युक्त होने के कारण ही लोक में व्यवहार के लिए शब्द के द्वारा संकेत स्थापित किये गये है सकेत के द्वाराही शब्दसे अर्थ की प्रतीति होती है। यह संकेत शब्द केवल मनुष्सय में ही नही अपितु देवताओं में भी प्रयोग होता है। इस प्रकार जो पीछे तीन दोष दिखाते है उन तीनोदोषो का निवारण हो जाता है।

पुरूषविद्याऽनित्यत्वात कर्म सम्पत्तिर्मन्त्रो चेदे ।।२।।

पुरूषों के ज्ञान के अनित्य होने के कारण केवल लौकिक ज्ञान के कारण सफलता नहीं मिल सकती है। इसलिए मनुष्य के कार्य को फलता प्रदान करने वाला मंत्र वेद में है।

न निर्वद्धा उपसर्गा अर्थान्निराहु रिति शाकतायनो नामाख्यातयोस्तु कर्मोपसंयोगद्योतका भवन्ति।

अलग करके मिले हुए उपसर्ग, अर्थो को निश्चित रूप से नही कहते हैं। नाम और आख्यात के अर्थ को उनके साथ मिलकर ज्ञान कराने वाले होते है, यह शाकटायन का मत है।

उच्चावचाः पदार्थाः भवन्तीति गार्ग्यः तद् य एषु पदार्थः प्राहुरिमे तम । नायाख्यातयारर्थविकरणम्।

एक ही शब्द के निरूक्त में नाना प्रकार के अर्थ होते हैं। इसलिए इनका जो अर्थ होता है वह नाम तथा आख्यात के अर्थ में परिवर्तन करने वाले उस अर्थ को ये उपसर्ग कहते हैं, यह गार्ग्य का मत है। 'आ' इत्यर्वागर्थे । 'प्र' 'परा' इत्येतस्य प्रातिलोम्यर्म्य आ (आङ्) यह उपसर्ग अवांग = समीप या सम्मुख अर्थ में प्रयोग होता है। प्र तथा परा में दोनो अपसर्ग विपरीत अर्थ को कहते हैं- 'अभि' इत्याभिमुख्यम् । 'प्रति' इत्येतज्य प्रातिलोम्यम्। अति' 'सु' इत्यभि पूजितार्थे । 'निर्' 'दुर्' इत्यतयोः प्रातिलाभ्यम्।अभि यह उपसर्ग अभिमुख्य को कहता है। प्रति यह उपसर्ग इसके विरूद्ध अर्थ को कहता है।अति तथा सु ये दोनो उपसर्ग प्रशंसा-परक है। निर् तथा दूर् ये दोनो उपसर्ग निन्दा -परक है।'नि' 'अब' इति विनिग्रहार्थीयो। **उत् इत्येतयोः प्रातिलोभ्यम्।** नि और वि ये दोनो उपसर्ग अभिभूत करने अर्थ में होते हैं और उत् उपसर्ग इन दोनो से विपरीत अर्थ में होते है।'सम' इत्येकी भावम् । 'वि' 'अप' इत्येतस्य प्रातिलाभ्याम् ।स्म् यह उपसर्ग एकीभाव को कहता है और 'वि' तथा 'अप' ये दोनो उपसर्ग इसके विपरीत भाव को कहते हैं।

'अनु' इति सादृश्यापरभावम। 'अपि' इति संसर्गम्।

अनु यह उपसर्ग सादृश्य तथा पश्चात् अर्थ को कहता है। अपि यह उपसर्ग संसग को कहता है।

'उप' इत्युपजनम् । 'परि' इति सर्वतोभावम्।

'अधि' इत्युपरिभावम्। ऐश्वर्यम् वाउपयह उपसर्गसमीप अर्थ में होता है। परि -यह उपसर्ग चारो तरफ अर्थ का बोध कराता है। अधि यह उपसर्ग उपर अर्थ का बोध कराता है।

एवमुच्चावचनार्थान् प्राहफः ते उपेक्षितव्याः ।

इस प्रकार भिन्न भिन्न अर्थ बतलाते है उन पर ध्यान देना चहिए

द्वितीय पाद

अथ निपाताः । उच्चावचेष्वर्थेषु निपतन्ति। अब निपातों को वर्णन होगा। ये भिन्न भिन्न अर्थो का बोध कराते है।अप्युपमार्थे । अपि कर्मोपसंग्रहार्थे । अपि अपि पद पुरणाः । तेषामेते चत्वार पमार्थे भवन्ति । निपात शब्द के तीन भेद माने गये है। कुछ तो उपमा के अर्थ में है, कुछ संयोग के अर्थ में ओर कुछ तो केवल पद पूरा करने के अर्थ में ।

इवेति भाषायां चान्वध्यायं च। अग्निरिव। 'इन्द्र इव इति।

इव शब्द संस्कृत तथा वेद दोनों मे उपमार्थक है। जैसे - अग्नि के समान, इन्द्र के समान।

नति प्रतिषेधार्थीयो भाषायाम्, उभयमन्वध्यायम् ।न यह निपात शब्द लोकमें निषेधार्थक तथा वेद मेंनिषेधार्थक एवं उपमा दोनों अर्थोमें प्रयोग होता है ।

'नेन्द्रं देवममंसत' इति प्रतिषेधार्थीयः। पुरस्तादपचारस्तस्य। यत् प्रतिषेधति। इन्द्र देव को नहीं मानता है यहा निषेधार्थक है। तब इसका प्रयोग पहले होता है।

'दुमदासो न सरायाम्' अत्युपमार्थीयः। उपरिष्टा दुपचारास्तस्य येन उपभिमीते। शराब पीये मतवालों के समान यहा पर 'न' निपात उपमार्थक है। जिससे उपमा दी जाती है। उसका प्रयोग बाद में

होता है ।

'चित्' यह निपात अनेकार्थक हैं जैसे आचार्य ही इस गुढ़ विषय को कह सकते हैं। यहाँ पूजा अर्थ में चित् का प्रयोग किया गया है।

आचार्यः आचारं ग्राहयति। आचिनोति अर्थान्। आचिनोति बुद्धिमिति वा।

आचार्य, आचार परम्परागत उपदेश ग्रहण करता है। अथवा जानने योग्य अर्थों का संग्रह करता है अथवा बुद्धि का विकास करता है।

'नु' इत्येषोऽनेककर्मा । इदंनु करिष्यति इति हेत्वपरेशे। 'कथं नु करिष्यति' इत्यनुपृष्टे। नन्वे तदकार्षीत् इति च ।

नु यह निपात भी चित् के समान अनेकार्थक है यह जो करेगा यहाँ हेतु के में नु का प्रयोग है। कैसे करेगा ? यहाँ दुवारा पुछने के अर्थ में । चूकि यह तो किया ही होगा! यह भी उसी अर्थ में।

अथाप्युपमार्थे भवति।

यहॉउपमा अर्थ में नु का प्रयोग हुआ है

वृक्षस्य नु पुरूहुत वयाः वृक्षस्य इव तेपुरूहूत शाखाँ। वयाः शाखाः,वेतेर्वातायना भवन्ति। शाखाः रवशयाः शक्नोतेर्वा।

जैसे -हे बहुत प्रकार के बुलाये गये (इन्द्र), तुम्हारी शाखाएं वृक्षसी हैं। वया - शाखाएं हवा के घर है। शाखा = आकाश मे शयन करने वाली अथवा शक धातु से शाखा शब्द बना है।

अथ यस्य आगमात अर्थपृथक्त्वम् अह विज्ञायते न तु औदेशिक मिव विग्रहेण पुथबत्वात् स कर्मोपसंग्रहः।

अर्थ संयोजक (कर्मोपसंग्रह) उसे कहते हैं जिसके आगमन से वस्तुओं का अलग अलग होना मालुम हो किन्तु यह सामान्य गणना के आधार पर स्पष्ट नही रहता । अलग अलग करने पर ही पृथक मालुम पड़तें है। उसे कर्मोपसंग्रह संग्रहार्थक निपात कहते हैं।

च अति समुच्चयार्थः। उभाभ्यां सम्प्रयुज्यते अहं च त्वं च वृत्रहन्'इति। एतस्मिननेवार्थे देवेभ्यश्च पितृभ्य आ' इति आकारः।च शब्द जो निपात है वह जोड़ने के अर्थ में है तथा दोनो शब्दों के बाद में प्रयुक्त होता है। जैसे - हे वृत्र को मारने वाले ! तुम और मै आ इसी जोड़ने के अर्थमें जैसे देवताओं और पितरों के लिए यह 'आ' है निपात च के स्थान पर प्रयुक्त हुआ है।

'वा' इति विचारणार्थे । हन्ताहं पृथिवीमिमां नदधानीह वाइह वा इति अथापि समुच्चयार्थे भवति । 'वायुर्वा त्वा मनुर्वा त्वा' इति।

वा जो शब्द है संकल्प विकल्प विचार अर्थ मे है। कहो मै पृथिवी को उठाकर यहॉ रख दू या वहाँ रख दूँ। हन्त पद यहाँ सम्बोधनार्थक है। समुच्चय अर्थ में भी वा निपात का प्रयोग होता है। जैसे - वायु और मनु वेग प्रदान करे।

'अह' इति च ह इति च विनिग्रहार्थोयौ पूर्वेण सम्प्रयुज्यते। अयमहं इदं करोतु अयमिदम्। इदं करिष्ति इदं न करिष्ति इति। अह औरह ये दोनो नियमार्थक हैं और पहिले के साथ प्रयुक्त होते हैं।

जैसे - यह ही इस निर्दिष्ट विशेष कार्य को करे और यह दूसरा व्यक्ति इस कार्य को नहीं करेगा। अधापि उकारः एतस्मिन् एवार्थे उत्तरेण। मृषेमे वदन्ति सत्यमु ते वदन्ति इति। अथापि पदपुरणः 'इदमु' 'तदृ इतिऔर इसी अर्थ मेंउकार यह निपात बाद में आने वाले के साथ प्रयुक्त होता है। जैसे - ये लोग झूठ बोल रहे है। और वे सत्य बोल रहे हैं। और उकार पदपूर्ति मे भी प्रयुक्त होता है जैसे - यह, वह,हि' इत्येषोऽनेककर्मा। हदं हि करिष्यति इति हे त्वपदेशे । कथं हि करिष्यति इत्यनुपृष्टे । कथं हि व्याकरिष्यति इत्यसूयायाम्।

हि यह निपात अनेकार्थक है। जैसे-क्योंकि इस कार्य को करेगा यह हेतु के कथन में है। ऐसा क्यों करेगा, यह अनुप्रश्न में है यह क्या कहलायेगा यह असूया अर्थ में हि का प्रयोग है। गुणेषु दोषाविष्करणम् असूया अर्थात् गुणों में भी इर्ष्यावश दोष निकालने का नाम असूया है।

किल इति विद्याप्रकर्षएवं किल इति। अथापि 'न'' ननु' इत्येताभ्या। सम्प्रयुयतक अनुपृष्टे। 'न किलैवम्' ननु किलैवम्।

'किल' यह निपात ज्ञान के लिए उत्कर्ष का सूचक है। जैसे- यह बात ऐसी ही है, यहाँ । और न तथा ननु निपात के साथ मिलकर अनुप्रश्न में प्रयुक्त होते हैं। जैसे न किनैवम् क्या यह बात नहीं है ? क्या वास्तव में ऐसा है ?

'मा इति प्रतिषेधे मा कार्षीः'।'मा हार्षीः' इति च।

म यह निपात प्रतिबोध अर्थ में प्रयुक्त होता है। जैसे - मत करो मत ले जाओ। 'खलु' इति च।'खलु कृत्वा' 'खलुकृतम्' अथापि पद पूरणः 'एवं खलुतद् बभूव' इति। और खलु यह निपात भी प्रतिबोध अर्थ में आता है। जैसे - 'नहीं करना चाहिए' 'मत करो' और पदपूर्ति में भी प्रयुक्त होता है। जैसे यह कार्य इस प्रकार हुआ।

शश्वत् इति विचिकित्सार्थीयो भाषायाम्।

'शश्वदूवम्' इत्यनुपृष्टे। एवं शश्वत् इत्यस्वयं पृष्टे।

शश्वत् यह निपात लोकमें निश्चय अर्थ में प्रयुक्त होता है। क्या सदा ऐसा ही होता है ।

तृतीय - पाद

नूनम् इति विचिकित्सा र्थीयो भाषायाम् उभयमन्वध्यायम् विचिक्त्सिार्थीयश्च पद पूरणश्च। नुनं यह निपात लोक में निश्चयार्थक और वेद में भी निश्चयार्थक एवं पादपुरक दोनो प्रकार का होता है।

अगस्त्य इन्द्राय हविर्निरूप्यमरूद्भ्यः सम्प्रदित्सांचकार। स इन्द्र एत्य परिदेवयान्चके।

अगस्त्य ने इन्द्र के लिए हवि देने का निश्चय करके भी उसे मरूतों को दे दिया । वे इन्द्र आकर शिकायत करने लगें।

न नूनमस्ति नो इवः कस्तद्वेद यददुभ्तम् ।
अन्यस्य चित्मभिसन्चरेण्यम्, इताधीतं बिनश्यति ।।१।।

आज तो निश्चय ही हमको नहीं मिलती और कल भी मिलने की आशा नहीं है। क्योकि अभी जो

बात भविष्य के गर्भ में है उसको कौनजान सकता है। सामान्य लोगो का चित्तचंचलहोता है। इसलिए उनका चित्त निश्चय ही बदल जाता है।

न नूनमस्ति अद्यतनम्। नो एव श्वस्तनम्। अध = अस्मिन् द्यविः द्यारित्यहो नामधेयम्। द्योतते इति सतः। श्वः उपा शंसनीयः कानः। हचः हीनः कालः। कस्त द्वेद यद्द्दुतम्ः कः? इदमणि इतरत अद्भुत अभूतमिव।

निश्चय ही आज की नहीं है और कल की नहीं है। 'अर्थ' इस दिन में। 'धु' दिवस का पर्यायवाचक है। द्योतन से युक्त होने के कारण । श्वः (आने वाला कल) आशा करने योग्य काल है। 'हचः'विता हुआ काल होने से जो अद्भुत बात है उसको कौन जानता है। जो भविष्य के गर्भ में है उसको कौन जानता है।।अन्य अर्थात् सामान्यजनों का चित्त अस्थिर होता है। अन्य अर्थात् साधारण पुरूष। चित्त शब्द चिती संज्ञाने धातु से बना है। अच्छी प्रकार से सोचा हुआ भी बदल जाता है अघ्यातं अर्थात् चाहा हुआ भी चित्त कीअस्थिरता के कारण स्थिर नहीं रहने पाता है और पदपूरक भी होता है।

नुनं साते प्रति वरं जरित्रे, दुहीयदिन्द्र दक्षिणामधोनी शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो वृहद्वदेमविदथेसुवीसहे इन्द्र धन से युक्त आप की यह दक्षिणा स्तुति करने वाले भक्त को अभीष्टफल को प्रदान करें । आप स्तुति करने वाले भक्तों को अधिक मात्रा मे धन सम्पत्ति शिक्षा आदि प्रदान करें । किन्तु हमारी उपेक्षा करके न दे। क्योंकि मै भी आप का भक्त हूँ। हमे धन धान्य की प्राप्ति हो और वीर पुत्र पौत्रादि से युक्त हम हमेशा यज्ञों में आप की अधिकाधिक स्तुति करते रहें।

सा ते प्रतिदुग्धां वरं जरिते। वरो वरयितव्यों भवति। जरिता गरिता। दक्षिणा मधोनी मधवती मधम् इति धननामधेय महतेर्दान कर्मणः। दक्षिणा दधतेः समर्धयति कर्मणः । व्यृद्ध समर्धयति इति। अपि वा प्रदक्षिणागमनात् दिशमभिप्रेत्य। दिक् हस्त प्रकृति दक्षिणो हस्तों दक्षतेः उत्साह कर्मणः। दाशतेर्वा स्यात् दानकर्मणः । हस्तो हन्तेः प्राशुः हनने।

आप की वह दक्षिणा स्तुति कर्ता अभीष्ट फल प्रदान करे। वर उसे कहते है जो वरण करने योग्य होता है। 'जरिता' अर्थात् 'गरिता' अर्थात स्तुति करने वाला धन से युक्त है। क्योंकि मध यज्ञ धन का नाम है दानार्थक मह धातु से बना है। दान अर्थ में मह् धातु नहीं आई है। धातूनामनेकार्थत्वात् के सिद्धान्त को मानकर ही यहाँ यह धातु दानार्थक कही गयी है। समृद्ध करना- जो ऋद्धि हीन को समृद्ध करे । अथवा दाये जाने के कारण दिशा को लक्ष्य करके बना हो दिशा की उत्पत्ति हाथ से हुई है। दक्षिण हस्त अत्साहार्थक दक्ष से या दानार्थक दाश् से बना है। हस्त हन् धातु मारने से बना है क्योंकि यह मारने में तेज है।

देहि स्तोतृभ्यः कामान। मास्मान अति दंहिः। मास्मान अतिहाय दाः। भगो नोऽस्तु। वृहद् वदेम स्वे वेदने। भगोः भजतेः। वृहत इति महतो नामधेयम् । परिवृढ़ं भवति। वीरवन्तः। कल्याण वीराः वा। वीरो वीरयति अमित्रांन। वे स्याद् गति कर्मणा वीरयते र्वा।

स्तुति करने वालों को काम दो। मुझे मत जलाओ। हमे छोड़ते हुए (किसी अन्य) को मत दो। हम लोगों का कल्याण हो। हम अपने गृहमें तेज से बोलें। 'भग' भज् सेवायां धातु से बना है। वृहद् या महान का पर्याय वाची है। क्योकि सब और वदा हुआ है वीरों से युक्त है। पुत्र वाले या कल्याणकारी पुत्रवाले। वीर शत्रुओं को छिन्न भिन्न करता है। गत्यर्थक वी धातु से वीर शब्द बना है या वीरय् (वीर सा काम करना) से बना।

सीम इति परिग्रहार्थीयो वा पदपूरणो वा। प्रसीमादित्यो असृजत। प्रासृजत इति वा। प्रासृजत सर्वतः इति वा। 'विसीमत सुरूचो वेन आवः' इति च । व्यावृणोत् सर्वतः आदित्यः। सुरूचः आदित्यरश्मयः सुरोचनात्। अपि वा, 'सीम' इत्येतत् अनर्यकम् उपबन्धम् आददीत पन्चमीकर्माणम। सीम्न = सीमतः मर्यादातः । सीमा = मर्यादा विषीव्यति देशाविति । 'त्व' इति विनिग्रहार्थीयं सर्वनाम अनुदात्तम् अर्धनाम इत्येके।

सीम यह निपात सर्वत्र अर्थ में आता है अथवा पदपूर्ति में भी आता है। जैसे - अदिति का पुत्र (वरूण) तेजी से जाय। (पदपूरण होने पर) या सर्वत्र तेजी से जाय। ये दोनो अर्थ सम्भव है। चमकने वाले आदित्य ने सर्वत्र खोल दिया । सीम को परिग्रहार्थक मानने पर बेनः अर्थात् सूर्य ने अपने किरणों को चारो तरफ फैलाया । अथवा सुन्दर चमक वाली होने से सूर्य की किरणें सुरूचः कहलाती है। अथवा सीम शब्द अपादान ग्रहणकरने वाले प्रत्यय को बिना किसी विशेष अर्थ के लगता है। सीमन-सीमा-सीमा मर्यादा से सीमा = मर्यादा , क्यो कि दो देशों को जोड़ती है। 'व' यह निपात विशेष नियन्त्रण अलग अलग कर निगर्मन करने के अर्थ में प्रयुक्त होने वाले सर्वनाम और अनुदात्त है। किन्ही के मत से अर्ध आधे का वाचक है।

ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान , गायत्रं त्वो गायति शक्करीषु।
ब्रह्मा त्वो वदतिजात विद्यां यज्ञस्य मात्रां वि मिमीतउ त्वः१।।

त्वः एक पुपुष्ठान् पोषण करने वाला प्रोहित ऋचां - ऋचाओं की पृष्टि करता है। और एक शक्वरी नामक ऋचाओं में गायत्री मन्त्र वाले मन्त्रों को गान करता है। अवसर आने पर विद्या को करता है और एक यज्ञ के स्वरूप् को निर्माण करता है।

इति ऋत्विक कर्मणां विनियोगमाचष्टे। ऋचाम् एकः पोषम आस्ते पुपुष्वान् होता। ऋक् अर्चनी।
इस मन्त्र के द्वारा यज्ञ में काम करने वाले चारो ऋत्विजों के कार्यो का विनियोग कहा जा रहा है एक ऋचाओं की पुष्टि करने वाला बैठता है। अर्चना करने वाला ऋक कहलाता है।

गायत्रं गायतेः स्तुतिकर्मणः । शक्वर्यः ऋचः शक्नोतेः । तद् याभिः वृत्रमशकद् हन्तु तत् शक्वरीणां शक्वरीत्वमिति विज्ञायते।

और अन्य शक्वरी नामक ऋचाओंमें गायत्री मन्त्रका गान करता है उद्गाता। 'गायत्रं' पदस्तुत्यर्थक गै धातु से बना है। शक्वरी ऋचाएँ हैं । शक्बरी शब्द शक् धातु से बना है। क्योकि इनके द्वारा (इन्द्र) ने वृत्र वध करने में समर्थ हुए। यही शक्वरीत्व है अर्थात् इसी कारण ये शक्वरी नाम से कही जाती है यह ज्ञात होता है।

ग्रहना एको जाते जाते विधां वदति। ब्रहना सर्वविधः सर्ववेदितुमर्हति । ग्रह्मा परिवृढ़ः श्रुततः । ब्रह्म परिवृढ़ सुर्वंतः।एक अर्थात् ब्रह्मा अवसर आने पर 'ब्रह्मा एक है जो प्रत्येक कठिन प्रसगं का समाधान करता है ब्रह्म सर्वज्ञ है ब्रह्मवेदों के ज्ञाता है। ब्रह्म ब्रह्म सबसे बड़ा है।

यज्ञस्य मात्रां विमिमीत एकः अध्वर्युः। अध्वर्युः अध्वरयुः अध्वर युनक्ति, अध्वरस्य नेता, अध्वर कामयत इति वा। अपि वाअधियाने युरूप बन्धः। अध्वर अति यज्ञनाम्। ध्वरति हिंसा **कर्मा, तत्प्रतिषेधः**। एक अध्वर्यु है जो यज्ञ का परिणाम नापता है। (सम्पन्न करता है) अध्वर्यु = अध्वरयु रकार के अकार का लोप अध्वर को जोड़ने वाला । अध्वर का नेता या अध्वर का कामना करने वाला क्यङ प्रत्यय हुआ है। अथवा अध्ययन के अर्थ में यु प्रत्यय लगा है। अध्वर यज्ञ का पर्याय है। ध्वर हिंसा करना इसका निषेध अहिंसा है।

निपात इत्येके। तत् कथम् । अनुदात्त प्रकृतिनाम स्यात् ? द्रष्टव्य भवति।

कुछ लोगों के अनुसार (त्व) निपात है। नहीं तो संज्ञा शब्द किस प्रकार अनुदात्त हो सकता है। फिर भी 'त्व' का रूप परिवर्तन देखा जाता है, जैसे -

उत त्त्वं सख्ये स्थिर पीतमाहुः, इति द्वितीयायाम् 'उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे इति चतुर्थ्याम् । अथापि प्रथमा बहुवचने।

मित्रता के विषय में कुछ को स्थिर होकर अर्थ ज्ञान कराने वाला कहते हैं- यहाँ द्वितीया विभक्ति में। कुछ के लिए यह शरीर फैलाती है यहा त्वस्मै में चतुर्थी विभक्ति है प्रथमा बहुवचन में भी होता है।

अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायो मनोजवेष्ठसमा बभूवुः।
आंदध्नास उपकक्षास उत्वे हदाइव श्नात्वा उत्वे ददृश्रे।।

आखों और कानों आदि अंगो की दृष्टि से समान स्थिति वाले विद्यार्थी भी मन के बेग से बराबर नही होते है। मुंह तक जल वाले तालाब के समान कुछ ख तक जलवाले तालाब के समान तथा स्नान करने योग्य (तालाब के समान) दिखलायी पड़े।

भावार्थ - जिस प्रकार तालाबों की गहराई भिन्न भिन्न होती है उसी प्रकार विद्वानों की वुद्धि भी भिन्न भिन्न है अर्थात वुद्धि के वेग में विषम हैं। सखा का अर्थ यहा कवि है जो कई प्रकार के हैं उत्तम, मध्यम और अधम आदि ।

अक्षिमन्तः कर्णवन्तत् सखायः । 'अक्षि चष्टे ' अनक्तेः इति आग्रायणः । तस्मादेते व्यक्ततरे इव भवतः इति ह विज्ञायते। 'कर्ण' कृन्ततेः । निकृन्त द्वारा भवति इच्छतेः इति आग्रायण। ऋच्छन्ति इव, खे उदगन्तामिति ह विज्ञायते।

आँख से युक्त और कान से युक्त मित्रगण। अक्षि यक्षिङ् धातु से बना है। आग्रायण अंजू धातु से बना है इसलिए यह अधिक व्यक्त होती है। यह ब्राह्मण में चक्षु शब्द का निर्वचन पाया जाता है।

मनसा प्रजवेषु असमाः बभूवुः । आस्य दध्नाः अपरे, उपकक्ष दध्ना अपरे। आस्यंम् आस्यतेः । आस्यन्दत उतदन्नमिति वा। दध्नं दध्यतकः सवति कर्मणः दस्पतेर्वा स्यात् विदस्ततरं भवति । प्रस्नेया

ह्रदा इवैक ददृशिरे। प्रस्नेयाः स्नानार्हाः। ह्रदो ह्रादतकः शब्द कर्मणः। ह्रादतेर्वा स्यात्
शीती भाव कर्मणः।

मन के वेग में समान नहीं हुए। और दूसरे कोई केवल मुंह भी ही थे। कुछ लोग काँख भी थे। आस्य शब्द असु क्षेवणे धातु से बना है। जिसका अर्थ होता है मुह में फेकना। या अन्न मुह में बहता है। अथवा आङ् उपसर्ग पूर्वक स्यन्दू प्रस्रवणे धातु से भी आस्य शब्द बन सकता है। यह अन्न को बहाता है दध्न बहने वाली दध धातु से अथवा दसु धातु से बना है। क्योकि क्षीणतर होता है कोई स्नान करने योग्य तालाबों के समान दिखायी दिये थे । प्रंस्नेय स्नान करने योग्य ह्रद शब्द ह्रादअव्यक्ते शब्दे' धातु से बना है अथवा ह्ा्रदी सुखे च शीतीभाव अर्थ वाले ह्राद धातु से बना है।

अथापि समुच्चयार्थे भवतिं । पर्याया' इव तदाश्विनम्' । आश्विन च पर्यायाश्च इति। अथ ये प्रक्ते अर्थे अमि ताक्षरेषु वाक्यपूरणाः आगच्छंति, पदपूरणास्ते मिताक्षरेषु अनर्थकाः। कमफ इन्, इत् उ ति।और 'त्व' यह निपात समुच्चय अर्थ में भी प्रयुक्त होता है।जैसे पर्याय और आश्विन ये दोनो यज्ञ पात्र के नाम है। पर्याय और अश्विन । यहाँ 'त्व' के स्थान पर त्वम् निपात का प्रयोग है और अर्थ के पूर्ण हो जाने पर गद्य ग्रन्थों में जो वाक्य पूर्ति में प्रयुक्त होते हैं । वे ही नियत अक्षरों वाले ग्रन्थों मे पदपूरक अनर्थक निपात होते हैं। जैसे - कम् इम् इत् और उ ये चार निपात मुख्य रूप से पद पुरक में आते हैं।

निष्टूक्त्रासश्चिदिन्नरो भूरितो का वृकादिव।

विभ्यस्यन्तो ववाशिरे शिशिरं जीवनाय कम्।।

बिना वस्त्र के मनुष्य बहुत सन्तान वाले बनकर मानो भेड़िये से डरते हुए रोने चिल्लाने लगें कि शिशिर ऋतु जीवन दान करें।

वस्त्र हीन तथा अधिक सन्तानों वाले कुछ दरिद्र लोग हेमन्त के शीत से अत्यन्त भयभीत होकर जीवन की रक्षा के लिए शिशिर को आवाहन करते है। यहाँ कम् यह निपात अनर्थक है शिशिर शब्द श्रृहिंसायां धातु से बना है। क्योंकि वह वृक्ष की पत्तियों को नष्ट कर देता है। अथवा शमु हिंसायाम् धातु से बना है। इन दोनों का अर्थ एक ही होता है।

एमेनं सृजता सुते। आसृजत एनं सुते। तमिद्वर्धन्तु नो गिरः। तं वर्द्धयन्तु नो गिरः स्तुतयः। गिरः गृणातेः। रस निकल जाने पर इसको डालो। हमारी स्तुतियॅा उस सोम को बढ़ावे यहाँ इत अनर्थक है। अतः हमारी वाणी उसको बढ़ावें वाणी का अर्थ स्तुति है।

'अयमु ते समतसि'। अयं ते समतसि।

यह आप का गमन स्थान है। यहॅा अयमु में का 'उ' अनर्थक या पदपूरक मात्र माना जाता है । अतः अकार को निकालकर अयं ते समतसि यह वाक्य रह जाता है।

इवोऽपि दृश्यते/'सुविदुरिव', 'सुविज्ञायंते इव''।

कहीं कहीं इव निपात भी अनर्थक या पदपूरक मात्र पाया जाता है। जैसे वे ब्राह्मण लोग यज्ञ को अच्छी तरह जानते हैं और वे दोनो अच्छी तरह जाने जाते हैं।

अथायि 'न' इत्येष 'इत' इत्येतेन सम्प्रयुज्यते परिभये। और 'न' यह निपात 'इत' इस अनर्थक निपात के साथ मिलकर परिभय अर्थ में प्रयुक्त होता है। कहीं ऐसा न होकि पाप करते हुए हम लोग नरक में गिरें।नरकं न्यरकं नीच्चैर्गमनम्।

नास्मिन् रमणं स्यानम् अल्पम् अस्ति इति वा । नरक का अर्थ न्यरक अर्थात् नीचे की ओर गमन है। अथवा जिसमें तनिक सा भी सुन्दर स्थान नहीं है।अथापि 'न' 'च' इत्येष 'इत' इत्येतेन सम्प्रयुज्यते अनुपृष्टे 'न' चेत् सुरां पिवन्ति इति सुरा सुनोतेः।और 'न' 'च' यह (दोनों निपात इकट्ठे) 'इत' इस अनर्थक निपात् के साथ मिलकर अनुप्रश्न के अर्थ में प्रयुक्त होता है। जैसे कहीं शराब तो नहीं पी रहे हैं।

एवं उच्चवचेषु अर्थेषु निपतन्ति। त उपेक्षितव्याः। इस प्रकार निपात भिन्न भिन्न अर्थोंमें प्रयुक्त होतें उनको अच्छी प्रकार से समझ लेना चाहिए।

अभ्यासार्थ प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1.निघण्टु किसे कहते है ?

2.निघण्टु शब्द की व्युत्पत्ति किस प्रकार से की गयी है ?

3. नाम किसे कहते है ?

4. सत्व किसे कहते है ?

5. भाव किसे कहते है ?

6.उपसर्ग किसे कहते है ?

7.निपात किसे कहते है ?

8. प्रथम पाद में किसका वर्णन है ?

9. निपात कितने प्रकार के होते है ?

10. निरूक्त के प्रथम अध्याय में कितने पाद है ?

बहुविकल्पात्मक प्रश्न

1. लोक में कितने प्रकार के पद होते हैं-

(क) चार प्रकार के (ख) छः प्रकार के

(ग) तीन प्रकार के (घ) दो प्रकार के

2. आख्यात किसे कहते हैं -

(क) जिसमें क्रिया की प्रधानता हो

(ख) जिसमें द्रव्यांश की प्रधानता हो

(ग) जिसमें लिगं संख्या कारकादि की प्रधानता हो

(घ) जिसमें कर्ता की प्रधानता हो

3. उपसर्ग कितने प्रकार के होते हैं -

(क) 18 (ख) 20

(ग) 25 (घ) 18

4. द्वितीय पाद में किसका वर्णन है -

(क) आख्यात (ख) उपसर्ग

(ग) निपात (घ) नाम

5. तृतीय पाद में किसका वर्णन किया गया है -

(क) निपात (ख) नाम

(ग) आख्यात (घ) उपसर्ग

4.4 सारांश

इस इकाई में यास्काचार्य द्वारा रचित निरूक्त के प्रथम अध्याय के प्रथम , द्वितीय एवं तृतीय पाद की व्याख्या की गयी हैं प्रथम पाद में निघण्टु किसे कहते हैं इसकी सिद्धि कैसे की गयी है, इसके बारे मे बताया गया है। इसमें लौकिक शब्दों को चार प्रकार से विभाजत किया गया है नाम, आख्यात, उपसर्ग, और निपात, उसी प्रकार से चार प्रकार के ये वैदिक पद भी है इस पाद में नाम' आख्यात उपसर्ग इन तीनों का वर्णन किया गया है। द्वितीय पाद तथा तृतीय पादमें निपात का सम्यग् रूप से विवेचन किया गया है।

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर हेतु इस इकाई में वर्णित तथ्यों का अनुसरण कर अभ्यास प्रश्नों का समाधान करने का अभ्यास करें।

4.5 शब्दावली

शब्द	**अर्थ**
समाम्नाय	वैदिक शब्द कोश
समाम्नातः	बनाया जा चुका है
निगमा	वेदार्थ
पूर्वापरीभूतम्	आदि से लेकर अन्त तक
आस्ते जायते	उत्पन्न होता है
अस्ति	रहता है
विपरिणमते	परिवतित होता है
वर्धते	बढ़ता है
अपक्षीयते	क्षीण होता है
विनश्यति	नष्ट होता है,
निर्वद्धा	अलग करके गुम्फित किये हुए
उच्चावचाः	नाना प्रकार के
दधिचित	दही के समान
कुल्माष	निकृष्ट धान्य
पुरूहूत	हे इन्द्र
समुच्चायार्थ	समुचित अर्थ में
वृत्रहन	इन्द्र
मृष	झूठ
शश्वत्	निश्चय
नूनम्	निश्चयार्थक
अगस्त्य	ऋषि यामन्त्र द्रष्टा
अद्य	आज
पर्पाय	यज्ञ पात्र के नाम
अनिताक्षरेषु	जिनमें अक्षरों की गणना का नियम नहीं होता
पुपुष्वान	पोषण करने वाला पुरोहित
जातविद्या	स्मय समय धरसमाधान
अक्षवन्तः	ऑख से युक्त
कर्णवन्तः	कान से युक्त
असमा	बराबर नही
ववाशिरे	रोने चिल्लाने लगे

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.उमाशकरं शर्मा 'ऋषि' निरूक्तम् (यास्कप्रग्रीतम्)चौखम्भा विद्याभवनचौक (बनारस स्टेट बैंक के पीछे)पो. वा. नं. 1069 वाराणसी 221001

2.गोपाल दत्त पाण्डेय वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी भट्टोजिदीक्षित विरचितचौखम्भा सुरभारती प्रकाशनके 06/117 गोपाल मन्दिर लेनपो. वा0 नं. 1129 वाराणसी 221001

4.8 उपयोगी पुस्तकें

आचार्य विश्वेश्वर निरूक्तम् (श्रीयास्काचार्य विरचित)ज्ञानमण्डल लिमिटेड वाराणसी 221001

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. नाम एवं आख्यात का विवेचन कीजिए

2.भावविकारों की समीक्षा कीजिए

इकाई 5: निरूक्त के प्रथम अध्याय के चतुर्थ, पंचम एवं षष्ठ पाद की व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना

वैदिक साहित्य से सम्बन्धित यह पंचम इकाई है। इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते हैं कि यास्काचार्य द्वारा रचित निरूक्त के प्रथम अध्याय के चतुर्थ पाद में किसका वर्णन किया गया है इस पाद मे मूलरूप से पदों को जो चार प्रकारका विभाग किया गया है - नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात इन चारों की व्याख्या चतुर्थ इकाई में की गयी है। अब इन चारों में नाम को आख्यातज माना गया है।

यास्काचार्य द्वारा रचित निरूक्त के प्रथम अध्याय के पंचम पाद मे मूलरूप से निरूक्त के प्रयोजनों के विषय मे विस्तृत चर्चा की गयी है।

इस इकाई में निरूक्त के प्रथम अध्याय के चतुर्थ पाद, पंचम पाद एवं षष्ठ पाद की विस्तुत चर्चा की गयी है इनके बारे मे आप भली भाँति परिचित होगे।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यास्काचार्य द्वारा रचित निरूक्त के प्रथम अध्याय के चतुर्थ पंचम तथा षष्ठ पाद की व्याख्या कर सकेंगे।

- निरूक्त के प्रथम अध्याय के चतुर्थ पाद की व्याख्या आप भली भाँति कर सकेंगे
- नाम और आख्यात क्या है इसके बारे में आप परिचित होगें।
- कौत्स के मत में मन्त्रार्थ की आवश्यकता है कि नहीं इसके बारे में आप परिचित होगें।
- प्रथम अध्याय के पंचम पाद की व्याख्या आप कर सकेंगे
- निरूक्त के षष्ठ पाद की व्याख्या आप कर सकेंगे
- ऋषिगणों ने मन्त्रार्थ की आवश्यकता क्यों बतायी इसके बारे में आप परिचित होगें।

5.3 निरूक्त के प्रथम अध्याय के चतुर्थ, पंचम एव षष्ठ पाद की व्याख्या

चतुर्थ पाद

इति इमानि चत्वारिपदजातानि अनुक्रान्तानि नामाख्याते चोपसर्ग निपाताश्च।

इस प्रकार अब तक तीन पाद तथा नाम आख्यात उपसर्ग और निपात इन चारों प्रकारके पदों का क्रमशः विवेचन कर दिया गया है।**तत्र नामानि आख्यातजानि इति शाकटायनः नैरूक्त समयश्च। न सर्वाणि इति गार्ग्यः वैयाकरणानां चैक।**

शाकटायन और निरूक्तकार यास्काचार्य का मत है कि सभी नाम आख्यातज हैं। गार्ग्य और कुछ वैयाकरणों कामत है कि सभी नाम आख्यातज नहीं है।

तद् यत्र स्वरसंस्कारौ समर्थौ प्रादेशिकेन गुणेन अन्वितौ स्यातां संविज्ञातानि तानि। यथा गौ, अश्वः, पुरूषः हस्तीति।

जहाँ स्वर (उदात्त, अनुदात्त आदि) और संस्कार (अर्थात प्रकृति प्रत्यय का विभाग) अर्थ के अनुकूल हो और क्रिया सम्बन्धी गुण से युक्त हो वे प्रसिद्ध हैं। अर्थात उनको सभी लोग आख्यातज मानते हैं । जैसे हारक, कारकः, पाठकः आदि किन्तु जहाँप्रकृति प्रत्यय का विभाग स्पष्ट नहीं हो वे रूढ कहे जाते हैं जैसे गौ, अश्व, पुरूष, हस्ती आदि।

चेत सर्वाणि आख्यातजानि नामानिस्युः, यः कश्च तत् कर्म कुर्यात् सर्व तत् सत्त्वं तथा आचक्षीरन्। यः कश्चाध्वानमश्नुवीत अश्वः स वचनीयः स्यात्। यत् किन्चिद् तृन्धातृ तृणं तत्।यदि सारे नाम आख्यातज हो तो कोई भी उस कर्म को करें उन सबको उस नाम से कहा जाता है। जैसे कोई भी मार्ग करेवह अश्व कहलाता है। और जो कुछ पीड़ा दायक हो वह तृण कहलाता है। इस लिए आख्यातज पद नहीं अपितु रूढ़ है।

अथापि चेत् सर्वाणि आख्यातजानि नामानि स्युः, यावद्भिर्भावैःसम्प्रयुज्येत तावद्भ्यो नामधेय प्रतिलम्भ: स्यात्। तत्रैव स्पूर्णा दरशया वा संजनीच स्यात्।

और भी यदि सारे भी नाम आख्यातज हों तो जितनी क्रियाओं के साथ सम्बन्ध हों उन सबके द्वारा उनका नामकरण होना चाहिए। इस प्रकार मानने पर खम्भे को दस्शया या संजीवनी कहते हैं।

अथापि य एषां न्यायवानृ कार्मनामिकः संस्कारः, यथा चापि प्रतीतार्थानि स्युः। तथा एनान्याचक्षीरन्। पुरूषं पुरिशय इत्याचक्षीरन। अष्टा इत्यश्वम, तर्दनमिति तृणम्।

इनमें जो व्याकरण के नियमों से युक्त किसी समानार्थक क्रिया ये उत्पन्न नाम की रचना है। तथा जिनका अर्थ तुरन्त मालूम हो जाय - उन्हें लोग उन धातुओं के अनुसार ही पुकारते हैं। 'पुरूष' को लोग पुरिशय कहते हैं। अश्व को अष्टा कहते हैं। तृण की तर्दन कहते हैं।

अथापि निष्पन्नें अभिव्याहारे विचारयन्त् प्रथनात पृथिवी इति आहुः । के एनाम अप्रथयिष्यत् ? किमाधार: चेति ?किसी शब्द के व्यवहार में चल पड़ने पर लोग उसकी उत्पत्ति पर विचार करते है प्रथ (फैलाना) से पृथिवी शब्द की निष्पत्ति हुई है तो इसको किसने फैलाया ? कहाँ पर बैठकर ?

अर्थ अनन्विते अर्थे अप्रादेशिके विकार, पदेभ्यः पदेतरार्द्धान् सन्चस्कार शाकटायनः। एतैः कारितं च यकारादिं च अन्तकरणम्,। अस्तेः शुद्धं च सकारादिं च

शाकटायन ने शब्द के साथ के साथ अर्थका कोई सम्बन्ध न होने और क्रिया से सम्बन्ध किसी विकार के न होने पर अनेक शब्दों से अन्य पदोंके आधे भागों की रचना की है। जैसे इण् गतौ प्रेरणार्थक रूप णिजन्त यकार को अन्त में रखा । अस् होना के मूल रूप के सकार को आदि में रखा। इसके अतिरिक्त कहा गया है कि क्रिया के पहने ही नाम पड़ जाता हे। इसलिए बाद में होने वाली क्रिया के आधार पर नामकरण नहीं होता । इस प्रकार यह उचित नहीं है।

पपो हि नु वै एतम्। तद् यत्र स्वर संस्कारौ समर्थौ-प्रादशिकेन गुणेन अन्वितौ स्यातां सर्व प्रादेशिकम इति। एवं सति अनुपालम्भ एवं भवति।

सबसे पहले यह कहा है कि -जहाँ-जहाँ स्वर और प्रकृति प्रत्यय का विभाग अर्थ के

अनुकूल और क्रिया सम्बन्धी गुण से युक्त होते हैं। सम्पूर्ण क्रिया सम्बन्धी गुणों से युक्त हैं। ऐसा कहने पर यह दोष नहीं बनता है।

यथो एतत्। यः कः च तत्कर्म कुर्यात् सर्व तत् सत्त्वं तथा आचक्षीरन इति । पश्यामः समान कर्मणां नाम धेय प्रतिलम्भम एकेषां न एकेषाम्।

यथा तथा परिव्राजकः जीवन: भूमिज इति।

और जो यह कहा है कि - जो कोई उस कार्य को करेगा उन सब पदार्थो को उस नाम से कहा जायेगा देखते है कि कुछ समानार्थक शब्दो का भी नामकरण होता है कि कुछ का नहीं , जैसे तक्षा (नामआख्यातज है) पर प्रत्येक तक्षण क्रिया का करने वाला तक्षा नहीं कहलाता है। केवल बढ़ ही तक्षा कहलाता है। इसी प्रकार परिव्राजक (सन्यासी), जीवन (जल) भूमिज मंगल ग्रह या वृक्ष ही उन नामों से कहा जाता है।एतेन एव उत्तरः प्रत्युक्तःइसी युक्ति या प्रक्रिया अगली युक्ति का खण्डन हो जाता है।

यथो एतत् यथा चापि प्रतीतार्थनि स्युस्तथा एतानि आचक्षीरनृ इति। सन्त्यल्प प्रयोगाः कृताऽपि ऐकपदिकाः । यथा व्रततिः, दमूना, जाटयः, आट्णारः जागरूकः दवि। होमी इति।

और यह जो कहा कि जिनका अर्थ तुरन्त मालुम हो जाय, उन नामों को लोग धातुओं के अनुकूल कहते है। इस तरह के कृदन्त सें बने शब्द तो प्रयोग मे कम आनेवाले है । तथा ऐकपदिक काण्ड में गिनाये गये है। जैसे व्रतति (लता), दमूना, (अतिथि या अग्नि), जाटचः (जटिल), आट्णारः (अटन शील), जागरूक (जागने वाला), दर्विहोमी (चम्मच से हवन करने वाला), आदि शब्द कृदन्त पद है। उनमें प्रकृति प्रत्यय विभाग है परन्तु अर्थ स्पष्ट नही होता है।अर्थो एतत् । निष्पन्ने अभिव्याहारे अभिविचारयन्ति इति। भवति हि निष्यन्ने अभिव्याहारे योग परोष्टिः। प्रथनात पृथिवी इत्याहुः कः एनाम अप्रथयिष्यत किमाधारश्च इति। अथ वै दर्शनेन पृथुः अप्रथिता चेत अपि अन्यैः। अथापि एवं सर्व एव दृष्ट प्रवादाः उपलभ्यन्ते।

यह कहा कि किसी शब्द के व्यवहार में चलने पर लोग उसकी उत्पत्ति पर विचार करते हैं। क्यों कि व्यवहार होने पर ही शब्द के निर्माण की जाँच होती है। प्रथ् फैलाना से पृथिवी बनी तो इसे किसने फैलाया और कहा बैठकर ? देखने में तो यह फैली हुई लगती है न? भंले ही इसे किसी ने नही फैलाया हों। इसके अलावा सभी लोग तो देखकर नाम देने वाले पाये जाते हैं।

अथो एतत् पदेभ्यः पदेतरार्धान सन्चस्कार इति यः अन्विते अर्थे सन्चस्कार स तेन गहर्चः। सा एषा पुरूष गर्हा।

यहाँ कहा कि कई आख्यात शब्दों से किन्हीं शब्दों की भिन्न भिन्न बनावट करते हैं। वहॉ उस प्रकार की रचना निन्दनीय है। यह पुरूष की निन्दा है।

अर्थो एतत् अवारूमसत भावात् पूर्वस्य प्रदेशः न उपपद्यते इति। पश्यामः पूर्वोत्पन्नाना सत्त्वानाम अपरस्मात् नामधेय - प्रतिलम्भमेकेषां न एकेषाम् । यथा बिल्वाद: लम्बचूडक:

इति बिल्वं भरणात् वा भेदनात् वा।

यहाँ कहाँ कि बाद में होने वाली क्रिया के आधार पर पूर्वमें नामकरण नही होता। यहाँ देखा जाता है कि पूर्व में होने वाली वस्तुओं का नामकरण बाद में होने वाली क्रिया के आधार कुछ दशाओं में होता है कुछ दशा में नही होता है। जैसे बिल्वाद लम्बचूडकः। आदि मे बिल्ण भक्षण और लम्बी चूछा की उत्पत्ति बाद को प्रयोग जन्म से ही होने लगता है।

पञ्चम्-पाद

अथापि इदमन्तरेण मन्तेषु अर्थ प्रत्ययो न विद्यते अर्थम् अप्रतियतो नात्यन्तं स्वरसस्कारोद्देशः। तदिदं विद्यास्पानम्। व्याकरणज्य कात्स्र्यम्। स्वार्थ साधकं च यदि मन्त्रार्थ प्रत्ययाय, अनर्थकं भवति इति कौत्सः। अनर्थकाहि मन्त्राः तदेतेन उपेक्षितव्यम् और इस निरूक्त के बिना मन्त्रों में अर्थ का ज्ञान नहीं हो सकता। मन्त्रों के अर्थ का ज्ञान नही रखने वाला निश्चित रूप से स्वर और संस्कार का निर्णय नही कर सकता यह निरूक्त एक विधा स्थान है कौत्स कहते है कि यदि (निरूक्त) मंत्र का अर्थ बोध कराने के लिए है तो व्यर्थ है, क्योकि मंत्र स्वयं अर्थ से रहित है।

नियत वसचो युक्तयः, नियतानुपूर्व्याः भवन्ति। अथापि ब्राह्मणेन रूप सम्पन्नाः विधीयन्ते। 'उरू प्रथस्व' इति प्रथयति। 'प्रोहाणि' इति प्रोहति। अथापि अनुपपन्नार्थाः भवन्ति। ओषधे त्रायस्व एनम्। 'स्वाधिते मा एनम् हिंसीः' इत्याह हिसनम्।मंत्र निश्चित शब्दों की योजना से युक्त होते हैं और क्रम भीनियत होता है। और इसके अन्य ब्राह्मणों के द्वारा उनके प्रयोजन निश्चित किये गये हैं। जैसे उरू प्रथस्व इससे पुरोडाश को फैलाया जाता है इस प्रकार पुरोडाश का फैलाने में शतपथ ब्राहमण द्वारा विनियुक्त किया जाता है। और प्रोहामि इत्यादि से कहकर पुरोडाश की ओर प्रेरित करता है , मंत्रो को सार्थक माना जाय तो असंगत अर्थ होते हैं जैसे हे ओषधि, तु इसकी रक्षा करो, और हे कुठार तू इसको मत मार ऐसा काटते हुए भी कहा गया है। अथापि विप्रतिषिद्धार्थो भवन्ति। और यदि मंत्रो को सार्थक माना जाय तो परस्पर विरूद्ध अर्थों को कहने वाले हैं।

'एक एव रूद्रोऽलतस्थो न द्वितीयः' 'असंख्याता सहस्राणि ये रूद्रा अधि भूम्याम्'।

एक ही रूद्र स्थित है दूसरा नहीं। एक रूद्र की सत्ता का प्रतिपादन किया है परन्तु दूसरी जगह इस पृथिवी पर असंख्य -सहस्रों रूद्र हैं।

अशतुरिन्द्र जज्ञिषे शतं सेना अजयत साकमिन्द्रः इति।

इन्द्र का कोई शत्रु नहीं है यह कहा गया है। इसके विपरित इन्द्र ने एक साथ सैकड़ो सेनाओं पर विजय प्राप्त की ये दोनों बाते परस्पर विरूद्ध हैं।

अथापि जानन्त सम्प्रेष्यति 'अग्नये' समीध्यमानाय अनुवूहि इति।

और जाने वालों को प्रेरणा करता है कि प्रदीप्त होने वाले अग्नि की स्तुति के लिए मन्त्रों को पढ़ो। अथाव्याह अदितिः सर्वम इति। 'अदितिद्यौः अदितिरन्तरिक्षम्' अति पदुपरिष्टात् व्याख्यास्यामः। और यह भी कहा गया है कि अदिति सब कुछ है अदिति स्वर्ग है अदिति अन्तरिक्ष है। इसकी

व्याख्या आगे की जायेगी ।अथाव्य विस्पष्तार्या भवन्ति । अम्यक् यादृश्मिन्, जारयायि, काणुका इति। यदि मन्त्रों को सार्थक माना जाय तो बहुत से मन्त्र ऐसे हैं जिनका अर्थ स्पष्ट नहीं है जैसे सम्पक् यादृस्मिन जारयायि काणुका इति।अर्थवन्तः शब्द सामान्यात्। एतद्वै यज्ञस्य सम यदूपसमृद्धं यत्कर्म क्रियमाणम् ऋग् यजर्वा अभिवदति इति च ब्राह्मणम्। क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिः इति।

मन्त्रों की सार्थकता का प्रतिपादन

शब्दों की समानता के कारण मन्त्र अर्थवान है और यह ब्राह्मण वाक्य मिलता है कि - यज्ञ की यही विशेषता है कि जिस रूप से युक्त जो कर्म किया जाता है उसी का यज्ञ में पढ़े जाने वाले ऋग्वेद और यजुर्वेद के मन्त्र भी प्रतिपादन करते है (सन्तानोत्पत्ति के लिए किया जाने वाले विवाह के अवसर पर पढ़े जाने वाले मन्त्रों मे वर वधु को यह आशीर्वाद दिया जाता है कि) तुम दोनों पुत्र-पौत्रो के साथ आनन्द करते हुए अपने गृहस्थ धर्म को व्यतीत करो।

अथो एतत् नियतवाचोयुक्तयो नियतानुपूर्व्याः भवन्ति इति। लौकिकेषु अपि एतत् । यथा 'इन्द्राग्नी पिता पुत्रौ' इति।जो यह कौत्स ने कहा है कि मन्त्र अनर्थक होते हैं यह मत ठीक नही है। क्योंकि शब्दो की योजना और उनका क्रम भी नियत होता है। यह बात लौकिक वाक्यों में पायी जाती है। जैसे- इन्द्राग्नी और पिता-पुत्रौ वे लौकिक प्रयोग है। इनमें कोई परिवर्तन नहीं हो सकता ।यथो एतत्। ब्राह्मणेन रूप सम्पन्नाः विधीयन्ते इति। उदितानुवादः सभवति। यथोएतत् । 'अनुपपन्नार्थोः भवन्ति इति । आम्नाय वचनारहिंसाप्रतीयेत।

अथो एतत्- 'विप्रतिषिद्धार्था भवन्ति' इति। लौकिकेषु अणि एतत्। यथाअसपत्नाऽयं ब्राह्मणः । अनमित्रो राजा इति।

और जो यह कहा है कि बहुत से मन्त्र परस्पर विरूद्ध अर्थ को कहने वाले होते हैं, लोक में भी यह पाया जाता है जैसे - इस ब्राह्मण का कोई शत्रु नहीं है; यह राजा शत्रु हीन हैं। यथो एतत्- 'जानन्तं सम्प्रष्यति' इति । जानन्तमभिवादयते, जानते मधुपर्क प्राह इति। और जो यह कहा है जानते हुए को प्रेरणा करता है। जानते हुए गुरू को शिष्य आदि अपना नाम उच्चारण करके 'अभिवादयेऽहं देवदत्त : , इत्यादि रूप से अभिवादन करता है। और जानते हुए को मधुपर्क प्रस्तुत करता है।

अथो एतत्- 'अदितिः सर्वम्' इति लौकिकेषु अपि एतत्। यथा 'सर्वरसा अनुप्राणपानीयम् ' इति। और जो यह कहा है कि अदिति ही सब कुछ द्यौ: अन्तरिक्ष आदि है, इसका उत्तर यह है कि लौकिक प्रयोगों में यह होता है जैसे पानी में सारे रस आ जाते है। अथो एतत्- 'अविस्पष्टार्था भवन्ति' इति नैष स्थाणोः अपराध: यदेनम अन्धो न पश्यति। पुरूषापराधः स भवति।

जो यह कहा कि बहुत से मन्त्रों मे अर्थ स्पष्ट नही है। इसका उत्तर यह है कि यह ठूँठ वृक्ष का दोष नहीं जो अन्धा उसको देख नहीं पाता है। यह तो पुरूष का दोष है।

यथा जनपदीषु विद्यातः पुरूष विशेषो भवति ।
परोवर्यवित्सु तु वेदितृषो भूयोविद्यः प्रशस्यो भवति।

जैसे मनुष्यों के साधारण कामो मे ज्ञान के कारण मनुष्यों मे अन्तर होता है। परम्परा से ज्ञान प्राप्त करने वाले लोगों में तो अधिक विद्यावाला ही प्रशंसनीय होता है।

षष्ठ पादः

अथापि इदमन्तरेण पदविभागो न विद्यते। अवसाय पदूते रूद्र मृड अति पद्वद् अवसं गावः, पथ्य् दनम्। अवतेर्गत्यर्थस्य। असौ नामकरणः। तस्मात् न अवगृहन्ति। अवसाया श्वान् इति । स्यतिः उपसृष्तो विमोचने। तस्मात् अवगृह्णन्ति।

निरूक्त का प्रयोजन

निरूक्त के बिना मन्त्रों के पदों का विभाग नहीं किया जा सकता है। जैसे - 'हे रूद्र' पैरों से युक्त भोजन पर कृपा करों । यहाँ पैरो से युक्त मार्ग का भोजन गाय है। अर्थात् यात्रा के अवसर पर मार्ग में गाय का दूध पीकर जीवन निर्वाह किया जाता है। इस मार्ग का पाथेय गौ की कहा है । गत्यर्थक अव् धातु से अस् प्रत्यय होकर अवसाय बना है। इस लिए अवसाय एक पद होने से उसमे पदच्छेद नहीं करते है। घोड़ो को छोड़कर । उपसर्ग के साथ षो धातु विमोचन अर्थ में प्रयुक्त होता है, इसलिए ग्रहण करते हैं ।

दूतो निऋत्य इदमा जगाम इति पन्चम्यर्थप्रेक्षा वा षष्ठयर्ध प्रेक्षा वा आः कारान्तम्। 'परो निर्ऋत्या आचक्ष्व इति। चतुव्यर्थप्रेक्षा वा। ऐकारान्तम । परः संपिकर्षः संहिता। पद प्रकृतिनि सर्व चरणानां पार्षदानि।।

यह कपोत रूप दूर से यहाँ आया है। इसमें आकार है वह जिसके अन्त में हो वहा पञ्चमी के अर्थ का प्रतिपादन का निर्देशक 'ऐ' है। अत्यन्त समीप हो जाने को संहिता कहते हैं या पदो के स्वाभाविक रूप् को संहिता कहते हैं। वेदके सभी शाखाओं के प्रातिशाख्य के ऋकमूल मे पद ही है। इसलिए पद पाक का ज्ञान निरूक्त से ही सम्भव है अत एव निरूक्त का ज्ञानअत्यन्त आवश्यक है।**अथापि या ज्ञे दैवतेनवहवः प्रदेशाः भवन्ति। तद एतेन उपक्षितव्यम्। ते चयेत व्रूयुः लिगंज्ञा अत्र स्म'**इति।इसके अन्य भी यज्ञ कर्म में देवताओ के द्वारा होते हैं। उन सबको इस निरूक्त के द्वारा देखें। निरूक्त को अनावश्यक मानने वाले याज्ञिक यह कहे कि हम तो लिगं को जानने वाले हैं। उसी से हम देवताओं का निर्णय कर लेंगे। यह मूल है इसलिए निरूक्त का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है।

इन्द्र नत्वा शवसा देवता वायु पृणान्ति इति वायु लिंग च इन्द्र लिंग च आग्नेये मन्त्रे। अग्निमान्यवे मंत्रे।

इन्द्र के समान और वायु के समान तुझ (अग्नि) को देवता लोग अपने बल से प्रशन्न करते है, इस आग्नेय मंत्र मे इन्द्र का नाम और वायु का नाम पाया जाता है यदि निरूक्त के बिना केवल लिंग अर्थात नाम को देखकर देवता का निर्णय करना अनुचित होगा। हे मंयो! तुम अग्नि के समान

प्रज्जलित होकर शत्रुओ का नाश इस मन्यु देवता के मंत्र में अग्नि का नाम या लिंग होने से अग्नि उसका देवता हो जायेगा।

त्विषितः ज्वलित । त्विषिरिति अपि अस्य दीप्ति नाम भवति।त्विषितः अर्थात् प्रज्वलित। त्विट् इसका दूसरा नाम दीप्ति भी होता हैअथापि ज्ञान प्रंशसा भवति, अज्ञान निन्दा च।

और शास्त्र में वेदार्थ के की प्रशंसा तथा अर्थ के अज्ञान की निन्दा होती है।

यः = जो, वेदम्=वेद को, अधीत्य = पढ़कर, अर्थम् = अर्थ को, न विजानाहत=नही जानता, अर्थ =वह, स्थाणु= सूखा वृक्ष, किल = बस, भारहार = भार को ढोने वाला, अभूत = हुआ, यः अर्थज्ञः = जो अर्थ को जानने वाला है। सकलम् = समुचे इत = ही, भदम् = कल्याण को, अश्नुते = पाता है। वह ज्ञान विधूत पाप्या= ज्ञान के पापों को धोकर, नाकम्=स्वर्ग को, एति = जाता है।

भावार्थ - जो वेद को पढकर उसके अर्थ को नही जानता है। वह केवल बोझ ढोने वाला गर्दभ के समान अर्थ के समझे बिना मंत्रो को रट लेने वाला वृक्ष को ठूँठ जैसा मूर्ख है। जो पढे हुए अर्थ को समझता है। और ज्ञान वह ही समस्त कल्याणों को प्राप्त कर सकता है। और ज्ञान के द्वारा समंस्त पापों को नाशकर के स्वर्ग को प्राप्त करता है।

यद गृहीमविज्ञातं निगदेनैव शब्द द्यते। अनग्नाविव शुष्कैधो न तज्ज्वलति कर्हिचित।।

जो बिना समझे रट लिया जाता है और पाठ मात्र से ही उच्चारण किया जाता है वह बिना अग्नि रखी हुई सुखी समीधाओं के समान कभी भी प्रज्वलित नही होती है।

उत् त्त्व पश्यन्न ददर्श वाचमुतत्त्वः श्रृण्वन्न श्रृणोत्येनाम।

उत त्वस्मैतन्वं विसस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः।।

जो वेद कण्ठस्थ करके उसके अथ्र को नही समझता है वह वाणी को देखता हुआ भी नही देखता है। और सुनते हुए भी उसको नही सुनाई देता है। किन्तु जो अर्थ को समझने वाला है उस अर्थ को वाणी अपने स्वरूप को इस प्रकार खोल देती है। जैसे ऋतुकाल मे कामयमान अपने संपूर्ण शरीर को प्रकाशित कर देती है वस्त्रों को खोल देती है वस्त्र रहित हो जाती है।

अपि एकः पश्यन् न पश्यति वाचम्। अपि च श्रृण्वन्न श्रृणोति एनाम्।

इति अविद्वासम आह अर्द्धम। अपि एक स्मै तन्वं विसस्रे इति स्वम् आत्मानं विवृणुते ज्ञानम्। प्रकाशनम् अर्थस्य आह अनया वाचा। उपमा उत्तमया वाचा। जाया इव पत्ये कामयमाना सुवासा ऋतुकालेषु। यथा स एना पश्यति स श्रृणाति। इति अर्थज्ञ प्रशसा। तस्य उत्तरा भूयसे निर्वचनाय।

और कुछ वाणी को देखते हुए भी नही देखते और कुछ सुनते हुए भी इसे नही सुनते- इस आधे से

मुर्ख के विषय में कहा गया है । और कुछ के लिए शरीर खोल देती है अर्थात जो अर्थज्ञ है उनको ज्ञान अपने आप को प्रकाशित कर देती है - इस वाक्य से उपमा अर्थ का प्रकाशव बतलाया गया है। अन्तिम वाक्य से उपमा बतलाई गयी है जैसे इच्छा करती हुई सुवसना पत्नी ऋतुकाल में पति के शरीर को खोल देती है। यह अर्थ जानने वाले की प्रशसा है। इसके बाद की ऋचा स्पृष्टतर उदाहरण के लिए है।

उतत्त्वं सख्ये स्थिर पीतमाहुः नैनं हिन्वन्त्यपि वाजि नेषु।अधेन्वा चरति माययैस वाचं शुश्रुवाँ अफलाभपुष्याम् ।।

वेद के अर्थो को जानने वाला एक को वाणी के द्वारा जानने योग्य कठिन विषय में इसके साथ नही समर्थ होते है जो अर्थ को न जानकर केवल वेद को कण्ठस्थ मात्र कर लेता है वह माया से बनी हुई बनावटी गाया के साथ विचरण करता रहता है। ये फल रहित फूल रहित वाणी को सुने हुए होता है। अर्थात वेद ज्ञान का मिथ्या अभिमान लिए फिरता है।

अपि एकं वाक् सख्ये स्थिरपीतमाहुः रममाणं निपीतार्थम् । देवसख्ये रमणीये स्थाने इति वां। विज्ञानार्थ यं न आप्नुवन्ति वाग्ज्ञेयेषु बलवत्सु अपि अधेन्वा हि एष चरति मायया वाक् प्रतिरूपया। न स्मै कामान् दुग्धे वाक् भवति इति वा किन्चित पुष्पफला इति वा अर्थ वाचः पुष्पफलमाह। याज्ञ देवते पुष्पफले। देवताध्यात्मे वा।

वचन से मित्रता के विषय में कुछ लोगो को स्थिर पीत अर्थात रमण करने वाला या अर्थ को जानने वाला कहा गया है। या देवता की मित्रता से युक्त रमणीय स्थान देवलोक को कहा गया है अर्थ जानने वाले की समानता वचन के द्वारा ज्ञेय कठिन स्थलों को भी नही जान सकते। वह (अन्य) धेनुहीन होकर माया से वाणी के भ्रम में चलता है । देवो और मनुष्यों के बीच दुही जाने वाली कामनाओं को, वाणी ऐसे व्यक्ति को प्रदान नही करती। जो फल और पुष्प से वाणी को सुने हुवे होता है या वाणी उसके लिए फल और पुष्प से रहित हो जाती है वाणी के अर्थ को फूल और फल कहा गया है यज्ञ और देवता के ज्ञान क्रमशः फूल और फल है। अथवा देवता ज्ञान और आत्मा का ज्ञान ही फूल और फल है।

साक्षात्कृतधर्माणः ऋषयो बभूवुः ते अवरेभ्यः असाक्षात्कृत धर्मेभ्यः उपदेशेन मंत्रान् सभ्प्रादुः उपदेशाय ग्लायन्तः अवरे बिल्मग्रहणाय इमं ग्रंथ समाग्नासिसुः । वेदं च वेदांग्नि च बिल्मं = भिल्मम्। भासनमिति वा।

वेदार्थ को स्वयं समझने वाले ऋषिगण होते थे। जब आगे के लोगो में सामर्थ्य कम हो गयी तो उन .ऋषियों ने धर्म का साक्षात्कार करने में असमर्थ अपने से बाद के अथवा अपने से छोटे को उपदेश

द्वारा मंत्रो को प्रदान किया। उसके बाद उस उपदेश से ग्रहण करने मे भी असमर्थ वाद के लोगों ने स्नष्ट रूप से ग्रहणकर सकने के लिए इस ग्रन्थ की रचना की । औरवेद ओर वेदागों को भी रचना की। बिल्त - भिल्म अर्थात स्पष्ट रूप से प्रतीत कराने के लिए निधन्तु की रचना की, यही अभिप्राय है।

एतावन्तः समानकर्माणो धातवः धातुर्दधातेः।

अ - इतने एक अर्थ के वाचक धातु वेद में पढ़े गये हैं। धातु शब्द दध धारणे धातु से बना है जिसका अर्थ होता है। अर्थ को धारण करता है। वह धातु कहलाता है।

एतावन्त्यस्य सत्त्वस्यनामधेयानि आ - इतने इस द्रव्य के पर्यायवाचक नाम हैं।एतावतार्थानाम् इदमभिधानम्।यह नाम इतने अर्थो का वाचक है।नैधन्टुकमिदं देवतानां प्राधान्येन इद्रम् इति।
यह अप्रधान नैधन्तुक देवताका नाम है। और वह प्रधान रूप से वर्णित देवताका नाम है। इसका विवेचन निघण्टु के दैवत काण्ड नामक तीसरे काण्ड में किया गया है।

तदन्य देवते मन्त्रे निपतति नैधन्टुकं तत्।अश्वं न त्वा वारवन्त। अश्वमिव त्वा बालवन्तम्। बाला दंश वारणार्थाः भवन्ति। दंशो दशतें।

इनमें से जो अन्य देवतावाले मन्त्र में आता है । वह नैघन्टुक देवता अप्रधान देवता कहलाता है। जैसे बालो से युक्त अश्व के समान तुम्हाराहम अपने प्रमाणों द्वारा आराधना करते है।मन्त्र में आये हुए बार शब्द का अर्थ 'बाल' है। और बाल डांसो को वारण करने के लिए होते है, डांसो अर्थात मच्छरो कां कारण करने वाले होने के कारण वाराणार्थक धातु से बनता है। दंश शब्द दंश दशने इस दंश धातु से बना है ।

'मृगो न भीमः कुचरों गिरिष्ठाः'। मृगः इव भीमः कुचरः गिरिष्ठाः। मृगः मार्ष्टेः गतिकर्मणः। भीमः विभ्यति अस्मात्। भीष्मः। अपि अस्मादेव । कुचरः इति चरति कर्म कुत्सितम्। अथ चेत देवताभिधानं, क्वअय न चरति इति गिरिष्ठाः गिरिस्थायी । गिरिः पर्वतः। समुदगीर्णो भवति। पर्ववान पर्वतः। पर्व पुनः पृणातेः प्रीणतेः वा। अर्धमासपर्व देवान् अस्मिन् प्रीणन्ति इति। तत्प्रकृति इतरत सन्धि सामान्यात्। मे धस्थायी। मेधोछपि गिरिः एतस्मात एव।।

मृग शब्दगत्यर्थक मृज् धातु से बना है मृज् धातु के दो अथ्र ळै एक मृज भद्धौ, तथा दूसरा मृज् शौचालकंरयोः किन्तु यहाँ धातुनामनेकार्थत्वात् मृज गत्यर्थक हीलिया जायेगा। भीम शब्द का अर्थ है। जिसे डरते है भीष्म शब्द इसी कारण या इसी धातु से बना है। अर्थात् जिससे डरा जाय उसको भीष्म कहते है कुचर यह कुत्सित गति अर्थका बावक है। और यदि देवता का नाम हो तो यह नहीं

कहा जा सका है। गिरिष्ठा का अर्थ है पर्वत पर रहने वाला गिरि का अर्थ है पर्वत। क्योकि वह समुद्गीर्ण अर्थात उपर उठा हुआ होता है। और वह पर्ववान पर्वो अर्थात् पत्थरों के जोड़ो से युक्त होता है। इसलिए उसको पर्वत कहते है । और पर्व शब्द पृण पृणनें, एवं प्रीम् तर्पणे कान्तौ च पृ तथा प्री धातु से बनता है मास के पूर्व भाग को पर्व कहते है। क्योंकि इनमे देवताओं का तृप्त करते है इसी के आधार पर सन्धि कीसमानता के कारण अन्य मन्त्र के गिरिष्ठाः पद का दूसरा अर्थ जो मेध मे रहने वाला है। मेध भी इसी कारण से आकाश में उठा हुआ होने से गिरि कहलाता है।

तद् यानि नामानि प्रधान्यस्तुतीनां देवतानां तद् दैवतम् इति आचक्षते। तद्उपरिष्ठात् व्याख्यास्यामः। नैधन्तु कानि नैगमानि इह इह। जो नाम प्रधान स्तुति वाले देवताओं के है उसे दैवात कहते है।उसकी व्याख्या वाद में करेगे। यहा पर नैधटुक और नैगम के नामो की व्याख्या

करेगे।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. सभी नाम आख्याजत से उत्पन्न है यह किसका मत है ?
2. शब्द को देखकर किसका विचार करते है ?
3. चतुर्थ पाद में किसका मूलरूप वर्ण किया गया है?
4. निरूक्त के बिना किसका ज्ञान नही हो सकता ?
5. प्रथम अध्याय के पन्चमणाद में मूल रूप् से किसका वर्णन किया गया है ?
6. जो बेद को पढ़कर अर्थ को नही जानता है वह किसके समान होता है ?
7. धातु शब्द किस धातु से बना है ?
8. मृण धातु के कितने अर्थ होते है ?

बहुविकल्पात्मक प्रश्न

1. सभी नाम आख्यतज से उत्पन्न नहीं है यह किसका मत है-

(क) गार्म्य तथा वैयाकरण (ख) गार्म्य तथा कुछ वैयाकरण

(ग) शाकटायन (घ) यास्काचार्य

2. कौत्य के मत में मन्त्र के अर्थ की आवश्यकता है कि नहीं

(क) है (ख) नहीं है

(ग) हो भी सकता है (घ) नहीं भी हो सकता है

3. निरूक्त के प्रयोजन के विषय में किस पाद में व्याख्या किया गया है -

(क) चतुर्थ पाद मे (ख) पन्चम पाद में

(ग) तृतीय पाद में (घ) प्रथम पाद में

4. यास्काचार्य के मत में मन्त्रार्थ की आवश्यकता है कि नहीं -

(क) नही है (ख) है

(ग) हो सकता है (घ) नहीं हो सकता है

5. वेदार्थ का स्वणं समझने वाला कौन होता था -

(क) ऋषिगण (ख) राक्षस गण

(ग) मनुष्य गण (घ) पशुगण

5.4 सारांश

इस इकाई में निरूक्त के प्रथम अध्याय के चतुर्थपाद, पन्चम पाद तथा षष्ठ पाद की व्याख्या की गयी है इस प्रकार चार प्रकार का नाम, आख्यात, उपसर्ग, और निपात , पदों का विभाजन पूर्ण में कर दिया गया है उन चार पदों में सभी ही नाम आख्यातज है। इनके बारे में चतुर्थ पादमे विशेष प्रकार की चर्चा की गयी है अब पन्चम पाद में निरूक्त के प्रयोजन के विषय में विशेष प्रकार की चर्चा की गयी है। षष्ठ पाद में भी निरूक्त के प्रयोजन के विषय में ही चर्चा की गयी है।

5.5 शब्दावली

शब्द	**अर्थ**
अनुक्रान्तानि	क्रमशः
गुणान्वितौ	गुण से युक्त
गौः	गाय
अश्वः	घोड़ा
स्थूणा	खूँटा
पुरिशयः	पुरूष
तर्दनम्	तृण
प्रोहामि	प्रेरित करता है

त्रायस्व	रक्षा कर
अवतस्थे	स्थित है
अजयत	विजय किया
जानन्तम्	जानने वाले को
अग्नये	अग्नि के लिए
अनुब्रूहि	पढ़ो
अदिति	सूर्य
घौ	आकाश
शब्द सामान्यात	शब्द की समानता के कारण
अर्थवन्त	अर्थवान है
अभिवादयते	अभिवादन करता है
अविस्पष्टार्थो	स्पष्ट अर्थ नहीं है
विद्यातः	ज्ञान से
पइते	पैरों से युक्त
अविशातम्	नही समझा
निगदेन	शब्द से
पश्यन	देखते हुए
तन्वमें	शरीर को
विससे	खोल देती है
उशती	कामना करने वाली
वाजिनेषु	कवियों की सभा में

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.उमाशकरं शर्मा ’ऋषि’ निरूक्तम् (यास्कप्रणीतम्)चौरबम्भा विद्याभवनचौक (बनारस स्टेट बैकं के पीछे)पो. वा. नं. 1069 वाराणसी 221001

2.गोपाल दत्त पाण्डेय वैयाकरण सिद्धान्त कौमूदी भट्टोजिदीक्षित विरचितचौखम्भा सुर भारती प्रकाशनके 06/117 गोपाल मन्दिर लेनपो. वा0 नं. 1129 वाराणसी 221001

5.8 उपयोगी पुस्तकें

आचार्य विश्वेश्वर निरूक्तम (श्रीयास्काचार्य विरचित)ज्ञानमण्डल लिमिटेड वाराणसी 221001

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1 वेदार्थ की आवश्यकता कब से हुई।

2. निरूक्त के प्रथम अध्याय पर एक निबन्ध लिखिए।

3. निरूक्त का परिचय प्रस्तुत किजिए।